शरद-हेमन्त '६५

श्वसन तंत्र विशेषांक

द्वैमासिक

जीवनीय

स्वास्थ्य पत्रिका

रु. १५

स्वस्थ फेफड़ों के लिए
प्रदूषण व धूम्रपान से बचें

- धूम्रपान और श्वास रोग
- प्रदूषण से बढ़ते श्वसन रोग

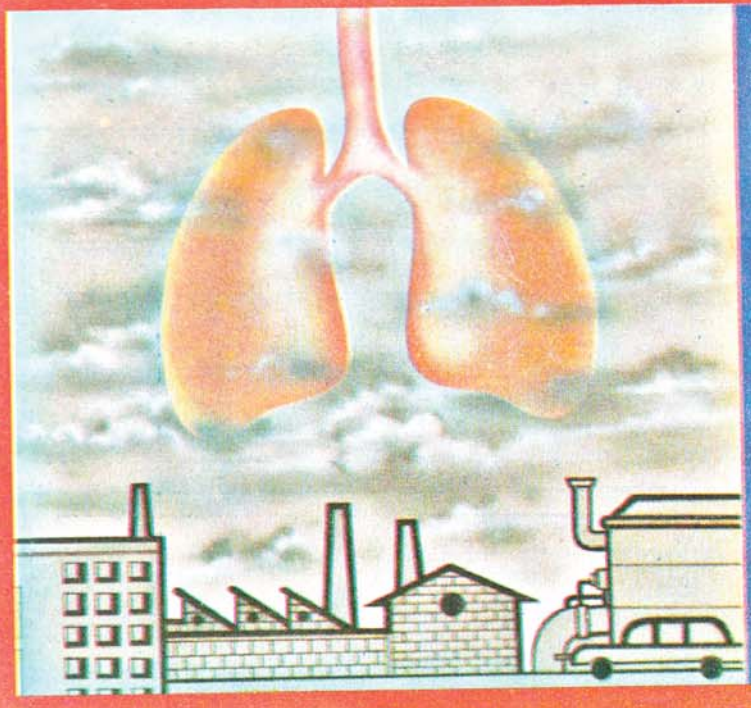

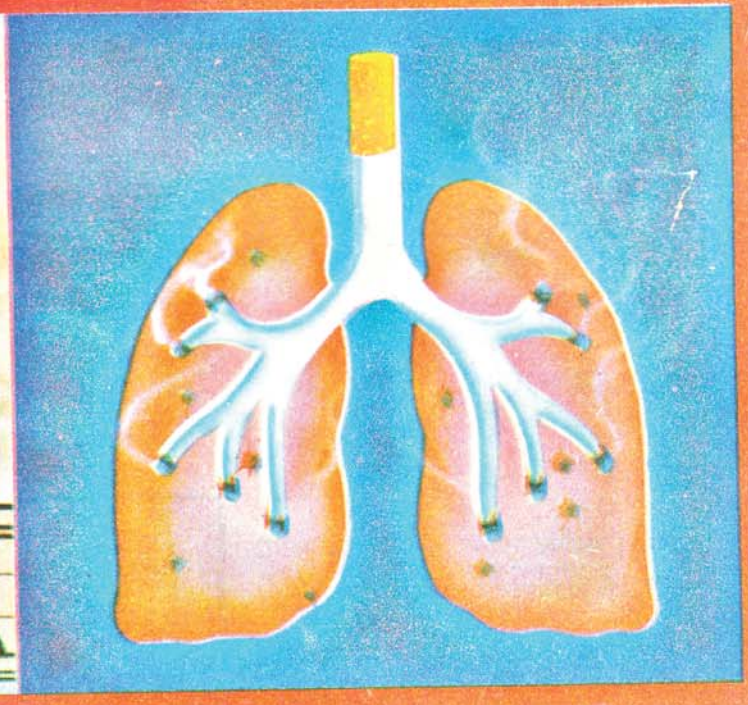

फेफड़ों का क्षय ❖ गले में खराश
दमा की चिकित्सा ❖ बच्चों के टान्सिल
जुकाम की देखभाल ❖ दमा रोगी की दिनचर्या
मैं हूँ आपकी खाँसी ❖ बच्चों में कुक्कुर खाँसी

जीवनीय द्वैमासिक

मानद संपादक मंडल (लखनऊ)
पं. काशीनाथ गोपाल गोरे
डॉ. पारस नाथ मिश्र
वैद्य पूर्ण चंद्र जैन
डॉ. प्रेम सागर
वैद्य बदलू राम रसिक
डॉ. बिशन नारायण मेहरोत्रा
वैद्य ब्रज बिहारी मिश्र
डॉ. एम. पी. शुक्ल

डॉ. रेनु महेन्द्र
वैद्य सुल्तान अली खां
डॉ. सी.एस. सैंबी
डॉ. हरि प्रकाश शर्मा

कार्यकारी संपादक
डॉ. नरेंद्र नाथ मेहरोत्रा

संयोजक
पं. माधवाचार्य

सम्पादकीय सहायक
कु.वीना टंडन
श्री के.बी.सिंह

अतिथि संपादक
डा. राजेन्द्र प्रसाद

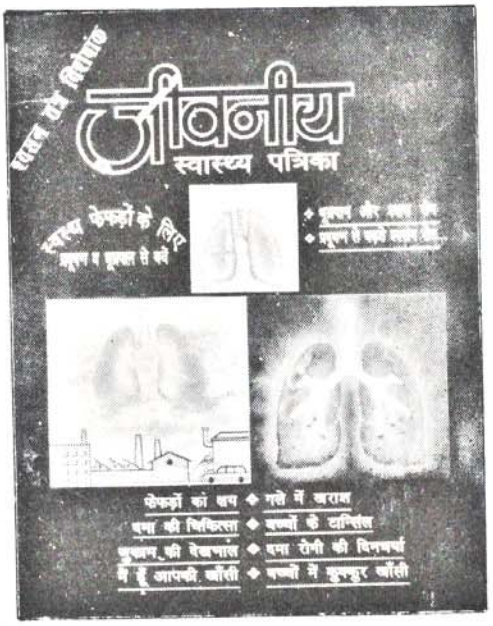

वर्ष ६, अंक ३-४
१६ सितम्बर १९९५ - १५ जनवरी १९९६

संपादकीय सलाहकार समिति
वैद्य अयोध्या प्रसाद अचल, गया
हकीम अल्ताफ अहमद आजमी, नई दिल्ली
डॉ. गीता बामेजई, नई दिल्ली
वैद्य विवेकानंद पांडे, नई दिल्ली
वैद्य भगवान दाश, नई दिल्ली
वैद्य मायाराम उनियाल, नई दिल्ली
डॉ. टी. के. अब्दुल रज्जाक, पालक्कड़
वैद्य शिव कुमार मिश्र, पीलीभीत
वैद्य सुभाष रानाडे, पुणे
डॉ. उमा, बंगलूर
डॉ. भारतेन्दु प्रकाश, बाँदा
श्री ए.वी. बालसुब्रहमण्यम, मद्रास
वैद्य रमेश म. नानल, मुंबई
वैद्य भास्कर वि. साठ्ये, मुंबई
वैद्य नरेन्द्र सो. भट्ट, मुंबई
हकीम सफदर नवाब, लखनऊ
वैद्य वी.बी. म्हैस्कर, वड़ौदरा

जीवनीय में छपने वाले लेखों को पाठकों के लिए उपयोगी बनाने हेतु हम सतत् संपादकीय प्रयास करते हैं। परंतु रोग निदान एवं चिकित्सा एक कुशल चिकित्सक का ही काम है। स्वस्थ जीवन हेतु आवश्यक जानकारी अवश्य जीवनीय से प्राप्त करें पर रोग-चिकित्सा कुशल चिकित्सक की ही देखरेख में करें।

— संपादक

इस पत्रिका के लिये कापार्ट से मिले अनुदान के हम आभारी हैं।

जीवनीय संबंधित समस्त विवादों का निपटारा लखनऊ के न्यायालयों के आधीन होगा।

जीवनीय सोसायटी की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, २५७ गोलागंज लखनऊ-१८ से मुद्रित तथा ई-III/ २४९ सेक्टर एच, अलीगंज लखनऊ-२० से प्रकाशित, संपादक डा. नरेन्द्र नाथ मेहरोत्रा

संपादकीय कार्यालय
जीवनीय
ई-III/२४९, सेक्टर एच
अलीगंज लखनऊ-२२६०२०
फोन-०५२२-७७५६८

जीवनीय चंदे की दरें

	व्यक्तिगत (रुपये)	संस्थागत (रुपये)
वार्षिक	५०	१००
द्वैवार्षिक	९०	१८०
त्रैवार्षिक	१३०	२६०
आजीवन	५००	१०००

चंदा साधारण डाकखर्च सहित है पर यदि पत्रिका रजिस्टर्ड डाक से मंगाना है तो उपरोक्त दरों में रू. ३५ प्रति वर्ष और जोड़ कर भेजें। चंदे की रकम ड्राफ्ट या मनीआर्डर द्वारा ही 'जीवनीय सोसाईटी' लखनऊ के नाम से भेजें। लोस्वापसंस के सदस्यों एवं स्वैच्छिक संस्थाओं को चंदे में १० प्रतिशत की छूट मिलेगी।

देशी औषधियों की विश्वसनीयता

नैसर्गिक द्रव्यों से बनी देशी चिकित्सा पद्धतियों की औषधों का मानकीकरण एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका समुचित समाधान इन चिकित्सा पद्धतियों के विकास के लिए भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि इन औषधों का रोगोपचार में प्रभावी रूप से उपयोगी होने के लिए। इन औषधों के मानकीकरण की समस्याएं कई स्तरों पर हैं और इन सभी स्तरों पर इन के प्रभावी समाधान आवश्यक हैं।

देशी चिकित्सा की औषधों के दो प्रकार व्यवहार में आते हैं, एक तो वे जिनका निर्माण स्थानीय चिकित्सक या वैद्य अपने अनुभव के आधार पर अपने रोगियों के लिए स्वयं करते हैं। दूसरी वे जिनका निर्माण कंपनियां करती है और व्यापार के जरिए उनका उपयोग वैद्य, डाक्टर या मरीज स्वयं करते रहते हैं। पहले प्रकार की औषधों के निर्माण में मुख्य समस्या होती है उन कच्ची औषधों की उपलब्धता की जो उस क्षेत्र में नहीं पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त कई बार इन औषधों का उचित प्रसंस्करण न हो पाने के कारण या उत्पादन विधि में त्रुटि होने के कारण समस्याएं हो सकती हैं। चूंकि अधिकांश परिस्थितियों में इन औषधों का प्रयोग वैद्य स्वयं करते हैं अतः अक्सर इन समस्याओं का समाधान भी कुशल वैद्य स्वयं कर सकते हैं।

कंपनियों द्वारा उत्पादित औषधों के साथ कई प्रकार की समस्याएं होती हैं। चूंकि इन उत्पादकों को कच्ची औषधें अधिक मात्रा में चाहिए होती है अतः बाजार से खरीदी गई सूखी औषधों में मिलावट की पहचान अपेक्षाकृत कठिन होती है। चूंकि ये औषधियां मूलतः व्यापार के उद्देश्य से बनाई जाती हैं अतः उसमें मूल्य व मुनाफे की स्पर्धा के कारण अक्सर समुचित मात्रा में मंहगे द्रव्यों का प्रयोग नहीं होता है। औषधों के मानकीकरण के स्पष्ट मापदंड न होने के कारण उनकी जांच का काम भी लगभग असंभव है।

कंपनियों द्वारा उत्पादित औषधियों में आज एक अन्य समस्या है पेटेंट औषधियों की जिनका न तो कोई शास्त्रोचित आधार होता है और न ही उन पर कोई व्यवस्थित अध्ययन किए गए होते हैं। चूंकि आयुर्वेद या यूनानी के फार्माकोपिया व मानक काफी अधूरे हैं अतः उनके आधार पर इन औषधों का परीक्षण लगभग असंभव होता है। वैसे भी इन औषधों के रजिस्ट्रेशन व लाइसेंस के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की बहुत कमी है तथा विभाग में धनाभाव के कारण प्रयोगाशालाओं व उचित निरीक्षण की व्यवस्था भी किसी राज्य में नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि इन सभी मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया जाए।

हाल ही में केंद्रीय स्वास्थ्य सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास करके देशी औषधियों के लिए अलग औषध नीति बनाने का सुझाव दिया है जो स्वागत योग्य है। आशा है कि देशी चिकित्सा पद्धतियों का जो अलग विभाग बनाया गया है वह कंपनियों द्वारा उत्पादित औषधों व कच्ची औषधों के मानकीकरण के लिए प्रभावी कदम उठाएगा। इसके लिए विभाग को प्रदेशों में शोध कार्य, परीक्षण व प्रशिक्षण के लिए समुचित धन की आवश्यकता भी होगी। साथ ही समुचित संख्या में प्रशिक्षित विशेषज्ञों की आवश्यकता होगी जो इन औषधों के लाइसेंस व मानकीकरण पर विशेष ध्यान दे सकें। जब तक इस दिशा में प्रभावी कदम नहीं उठाए जाते, देशी चिकित्सा पद्धतियों की औषधों को विश्वसनीयता नहीं मिल सकेगी।

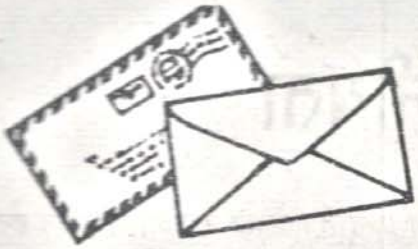

पाठकों के पत्र

मैं जीवनीय का नियमित पाठक हूँ। मुझे यह स्वास्थ्य पत्रिका बहुत रोचक लगती है। मेरा एक निवेदन है कि यदि सम्भव हो तो इस पत्रिका में कुछ चित्र और दिया करें। रंगीन चित्रों से पत्रिका अपने–आप में एक अलग आकर्षण प्राप्त कर लेती है।

जनेश्वर प्रसाद दीक्षित, गाजियाबाद

यदि आप हमारी पत्रिका को ध्यानपूर्वक देखेंगे तो यह ज्ञात होगा कि हमारा हमेशा से यह प्रयत्न रहा है कि हम लेखों के साथ अधिक से अधिक चित्र रखें। इधर तो हमलोग कुछ लेखकों के फोटो भी प्रकाशित कर रहे हैं। आप लोगों के इस तरह के सुझाव का हम स्वागत करते है।

संपादक

मैं आपके द्वारा प्रकाशित जीवनीय स्वास्थ्य पत्रिका का नियमित पाठक हूँ। हर नई ऋतु की शुरुआत से ही इस पत्रिका का इन्तजार शुरू करता हूँ। पत्रिका में प्रकाशित स्थायी स्तम्भ तो रुचिकर होते ही हैं। इसके अतिरिक्त विशेषांक से सम्बन्धित आवरण लेख पढ़ने में बहुत आनन्द आता है।

हरि प्रसाद शर्मा, मेरठ

मुझे जीवनीय पत्रिका पढ़ने का अवसर मिला और यह महसूस हुआ कि यह पत्रिका ग्रामीण क्षेत्रों के पुस्तकालय के लिए उपयोगी है। जो अधिकारी, कर्मचारी और छात्रगण इन क्षेत्रों की संस्थाओं से जुड़े हैं उन लोगों के लिये नवीनतम जानकारी प्राप्त करने का यह सही माध्यम है। मैं इस सम्बन्ध में इसके अब तक के प्रकाशित अंकों को प्राप्त करना चाहता हूँ।

राम शंकर, मथुरा

जीवनीय का 'मानसिक रोग' विशेषांक पढ़ा और महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की। मैं इस पत्रिका को अपने ग्रंथालय में संदर्भ पत्रिका के रूप में रखना चाहता हूँ। 'जीवनीय' ने आयुर्वेदीय चिकित्सा जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, ऐसा मेरा मानना है।

नरेश पाल, बम्बई

मुझे जीवनीय पढ़ने का अवसर मिला। जिस अंक को मैने पढ़ा उसमें मधुमेह पर एक लेख था। वास्तव में उसको पढ़कर बहुत जानकारी प्राप्त हुई और रोचक भी लगा। मैं मधुमेह पर विस्तृत जानकारी चाहता हूँ इसलिए जीवनीय के अब तक के प्रकाशित अंको को मंगवाने के लिए इच्छुक हूँ।

विद्यासागर, हरियाणा

जीवनीय पत्रिका के लिए अपने जो विचार हम तक पहुँचाए है, हम लोग उसका स्वागत करते हैं और हम यह आशा करते हैं कि आप हमें भविष्य में भी अपने विचारों से अवगत कराते रहेगें।

संपादक

मैं जीवनीय स्वास्थ्य पत्रिका को बहुत लम्बे समय से पढ़ रहा हूँ। यह देखकर प्रसन्नता होती है कि इस पत्रिका में प्रकाशित पठन सामग्री दिन पर दिन रोचक हो रही है। इसके प्रकाशन में विलम्ब पाठक को विचलित कर देती है। कृपया यह सूचित करिए कि किन परिस्थितियों में इसका प्रकाशन समय से नहीं हो पाता है।

डा. संतोष कुमार मालवीय, इलाहाबाद

जीवनीय का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है। कभी–कभी किसी अंक के प्रकाशन में किसी विशेष परिस्थिति में देर हो जाती है।

संपादक

किसी मित्र के घर पर 'जीवनीय' पत्रिका देखी और फिर उसको ध्यान से पढ़ा। इसे पढ़कर ज्ञान में वृद्धि हुई। ऐसी रोचक व ज्ञानवर्धक पत्रिका को हमेशा पढ़ना चाहता हूँ।

डा. जी. एस. भल्ला, फिरोजपुर

जीवनीय का शिशु स्वास्थ्य विशेषांक मिला और पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। यह अंक बहुत रोचक लगा क्योंकि इससे बहुमूल्य जानकारी प्राप्त हुई। इस पत्रिका में विभिन्न योग्य वैद्यों के लेख छपते हैं, जो कि तरह–तरह के रोगों के उपचार अपने अनुभव के आधार पर बताते हैं। जिससे पाठक को वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। कृपया हमें यह बताने का कष्ट करें कि हम उनसे विशेष जानकारी कैसे प्राप्त कर सकते हैं। कुछ लेखों के विषय में कुछ अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने की इच्छा है।

चेतना वर्मा, लखनऊ

यदि आप किसी लेख के विषय में अधिक जानकारी चाहते हैं तो हम लेखक का पता आपको दे सकते हैं ताकि आप उनसे सीधे सम्पर्क कर सकें।

संपादक

इस अंक में

रोग एवं स्वास्थ्य

सूर्य नमस्कार	१०
अपने स्वास्थ्य की जांच स्वयं करें	१२
स्लेट पेन्सिल उद्योगों में मरते लोग	१६
टायफायड नियंत्रण	१७
रक्तमोक्षण चिकित्सा	१८
गलगण्ड (घेंघा)	१९
विटामिनों का महत्व	२०
हमारी बीमार स्वास्थ्य व्यवस्था	६८
विकासशील देशों पर दोहरा हमला	६९

जीवनीय श्वसन

श्वसन तन्त्र की रचना	२२
हम सांस क्यों और कैसे लेते हैं?	२४
धूम्रपान और श्वास रोग	२६
कष्टदायी टान्सिल	२७
गले की खराश	२९
मैं हूँ खांसी आपकी	३०
जुकाम की देखभाल	३१
बच्चों की कुक्कुर खांसी	३३
कुक्कुर खांसी का घरेलू इलाज	३४
फेफड़े का क्षय	३५
भारत में क्षयरोग का आतंक	३७
तमक श्वास या दमा	३८
दमा रोग की अनुभूत चिकित्सा	३९
दमे की आहार चिकित्सा	४१
वमनकर्म एवं उसकी उपयोगिता	४२
दमा रोगी की दिनचर्या	४३
तम्बाकू की बुराइयां	४४
प्रदूषण से बढ़ते श्वसन रोग	४५

औषध द्रव्य

जंगली निकवन	५६
कुप्पी	५७
सनई के औषधीय उपयोग	५८

आहार द्रव्य

स्त्री रोगों में पथ्य सिंघाड़ा	४९
बहूपयोगी नारियल	५१
केला	५२

स्थायी स्तंभ

स्वास्थ्य समाचार	४
अनुसंधान समाचार	५
जीवविज्ञान समाचार	६
मधुसंचय	७
शरद ऋतुचर्या	८
हेमन्त ऋतु में हितकर दिनचर्या	९
आयुर्वेद कल, आज और कल	१४
दादी मां के नुस्खे	४६
घर आंगन में	४८
वनौषधि संग्रह	५४
पौष्टिक व्यंजन	६१
ज्ञानकोष- अरोचक	६२
जीवनीय समाचार	६३
जीवनीय विज्ञान पहेली	६४
पुस्तक समीक्षा	६६
ज्योतिष और रोग	६६
लो.स्वा.प.सं.स. समाचार	६७
सक्रिय योगदान	७०

साइनस पीड़ित की ऐण्डोस्कोपी सम्भव

साइनस समस्याओं का उपचार करने की सारी परंपरागत विधियां असफल रही हैं। अब आशा की किरण नजर आने लगी है। ऐण्डोस्कोपिक नासिका और साइनस शल्यक्रिया की एक नई तकनीक और रोग निदान की एक नई पद्धति खोजी गई है जो साइनस पीड़ितों को राहत पहुंचायेगी।

अस्सी के दशक के बीच में मेसरक्लिंगर की एण्डोस्कोपी पद्धति का जन्म हुआ। इससे यह जानकारी प्राप्त हुई कि अग्रभागी और मैक्सीलरी साइनस संकरी दरारों के जटिल तंत्र, जो वायु–संचरण और सफाई का कार्य करते हैं, के माध्यम से नाक से अपना संबंध बनाए रखते हैं। यहां पर संकरों में पड़ी छोटे बालों वाली कोशिकाएं व्रण को धीरे–धीरे खिसकाने का कार्य करती रहती है, जिससे सफाई सुचारू ढंग से चलती रहती है। फिर भी व्रण की अधिकता के कारण कोशिकाओं का काम मंद या बिलकुल ही मंद पड़ सकता है। विशेष परिस्थितियों में, बड़े साइनस भी इससे ग्रस्त हो सकते हैं और कोटरों में जमाव कीटाणुओं को जन्म दे सकता है।

नई और परंपरागत तकनीक का मूलभूत अंतर यह है कि परिणामों का इलाज करने की बजाय वह उसके कारण पर ध्यान देती हैं। न केवल यह, बल्कि एण्डोस्कोप की सहायता से, एक शल्यचिकित्सक नासिका कोटर को बड़े रूप में और अच्छे ढंग से देख सकता है। इसमें रक्तस्राव बहुत कम होता है जिससे शल्य चिकित्सक को देखने की बहुत सुविधा रहती है। ऑपरेशन में लगभग बीस मिनट लगते है और कोई चीरे और टांके नहीं लगाने पड़ते। शल्य–क्रिया के बाद नाकों को भरने की जरूरत नहीं पड़ती। सिर्फ नासिका कोटर के दोनों ओर दो छोटे–छोटे पैक लगाने पड़ते हैं। रोगी दो–तीन सप्ताह में पूरी तरह ठीक हो जाता है।

पश्चिम बंगाल में पानी की विषाक्तता

भारतीय वैज्ञानिकों ने पश्चिम बंगाल में एक ऐसे पर्यावरणीय संकट को ढूँढ़ निकाला है, जिसने लाखों लोगों को प्रभावित किया है और जिससे लाखों लोगों की मृत्यु तक हो सकती है। पीने के पानी के भंडारों में आर्सेनिक (संखिया) के रिसने से यह संकट उत्पन्न हुआ है।

जादवपुर विश्वविद्यालय, कलकत्ते के दीपंकर चक्रवर्ती और उनकी टीम ने पीने के पानी में आर्सेनिक लवणों की मात्रा सुरक्षित मानी गयी मात्रा से ४० गुनी पायी है। अब तक उन्होंने ३२१ गांवों का सर्वेक्षण किया है और पाया है कि लगभग आठ लाख व्यक्ति आर्सेनिक से प्रदूषित पानी पी रहे हैं।

पौने दो लाख से अधिक व्यक्तियों में विषाक्तता के स्पष्ट लक्षण पाये गये। जैसे आंखों में सूजन, त्वचा में घाव, गलन और वृद्धि। कोई भी गॉव प्रदूषण से मुक्त न था। यदि यही स्थिति पूरे क्षेत्र में हो तो तीस लाख से अधिक व्यक्ति तिल–तिल कर मरते हुए पाये जायेंगे।

भूमिगत जलस्तर से पानी के अधिकाधिक निष्कासन से सामान्य तौर पर मूल शैल सूख जाता है। इस मूल शैल में आर्सेनिक होता है जो शैल के सूख जाने पर आक्सीकृत होकर पानी में घुलने वाला आर्सेनिक बन जाता है।

अनुसंधानकर्ताओं का मानना है कि १५० मीटर से कम गहराई से पानी खींचने वाले नल कूपों का पानी असुरक्षित है क्योंकि वे अत्यंत प्रदूषित शैल स्तर से पानी खींचते हैं। माल्दा में तो एक कुआं हर साल ३३ किलो संखिया उगल देता है।

प्राचीन गर्भनिरोधक

गर्भनिरोधकों का पहले–पहल उल्लेख ई.पू. पांचवीं शताब्दी के चिकित्सा साहित्य में पाया जाता है। उस समय के एक ग्रंथ में गर्भनिरोध के लिए लिंग पर जूनिपर नामक स्तंभक दवा का लेप करने तथा दूसरे ने हनीसकल पौधे के काढे का सेवन करने को लिखा है। स्तनपायी अंडाणु का आविष्कार १८वीं सदी में हुआ। चौथी शताब्दी में अरस्तू को ज्ञात आवर्तन विधि इस विश्वास पर आधारित है कि मासिक धर्म की समाप्ति पर, जबकि गर्भाशय ने अपनी मासिक सफाई कर ली होती है और बीज को प्राप्त करने के लिए वह खुला भी होता है, उस स्थिति में उर्वरता सर्वोच्च होती है।

यूनानी और रोमन ग्रंथों ने अवरोधी गर्भनिरोधकों के प्रयोग की, जैसे गाढ़े जैतून के तेल में तर की हुई ऊन की पेसरी की सलाह दी है। पेसरी गर्भाशय की ग्रीवा को बंद करती है। और यूनानी और रोमन चिकित्सा ग्रंथों ने अवरोधी गर्भनिरोधकों जैसे गाढ़े जैतून के तेल में तर की हुई ऊन की पेसरी, राल जो गर्भाशय की ग्रीवा को बंद करती है और योनि को शुक्राणु के प्रतिकूल बनाने के लिए स्तंभकों के प्रयोग की सलाह दी है। सिल्फियम जैसे मुख से लेनेवाले गर्भनिरोधक भी बताये गये हैं। सिल्फियम को वे खाते थे और लगाते भी थे और कहा गया है कि जिन पतियों को संतान की कामना है वे इसे न खायें।

चीन और भारत में किये गये हाल के अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि परंपरागत चिकित्सा में प्रयुक्त कुछ पौधों में कामोत्तेजक स्टीरायड पाये जाते हैं। गर्भनिरोधी जादू भी प्रचलित था। एक पांडुलिपि के अनुसार दुनिया में एकमात्र गर्भनिरोध की विधि यह है कि एक मेंढ़क को पकड़ कर उसे माहवारी के खून में तर किए हुए बिटरवेच के बीज खिलाये जायें। वह जितने बीज निगलेगा उतने वर्षों तक संतान नहीं होगी।

वस्तुतः अधिकांश गर्भनिरोधक आर्तवजनक थे और जो द्रव्य आर्तवजनक हैं वे गर्भ के प्रारंभकाल में गर्भस्राव कराने में सफल हो सकते हैं। प्राचीन परंपराओं में नये गर्भनिरोधकों के स्रोत हो सकते हैं। लेकिन परंपरागत गर्भनिरोधक संक्षोभक और विषाक्त भी हो सकते हैं; जिनसे व्रण, बांझपन और मृत्यु तक हो सकती है।

शोर-गुल से बचाएगी मशीन

ब्रिटेन में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के डॉक्टर ब्रायन मूर के नेतृत्व में एक अनुसंधान दल एक अत्याधुनिक ए जी सी प्रणाली विकसित कर रहा है क्योंकि केवल ब्रिटेन में करीब ५० लाख लोग श्रवण शक्ति संबंधी समस्याओं से पीड़ित हैं। इस दल ने नई प्रणाली के तीन अलग-अलग मॉडल भी तैयार कर लिये हैं। इनमें से एक आवाज के स्तर को नियंत्रित करके उसे बहुत ज्यादा भीड़-भाड़ एवं शोरगुल वाली जगहों पर भी सुनने के लायक बना सकती है। यह आवाज के स्तर को स्वचालित ढंग से नियंत्रित करती है, यानी कि उपयोग करने वाले को बार-बार उसके स्तर को बदलना नहीं पड़ता है।

ए जी सी प्रणाली का दूसरा मॉडल अचानक सुनाई देने वाली तेज आवाजों, जैसे दरवाजे के तेजी से बन्द होने आदि से संरक्षण प्रदान करता है। इसकी मदद से उपयोग करने वाले व्यक्ति को सुनाई देने से पूर्व ही ध्वनि का स्तर अपने आप कम हो जाता है और उसे ऐसा लगता है कि मानो कोई बहुत तेज आवाज हुई ही न हो।

ए जी सी प्रणाली का तीसरा माडल उपयोग करने वाले को बहुत धीमे से उच्चरित शब्दों को सुनने में मदद देता है। केम्ब्रिज का अनुसंधान दल इन तीनों मॉडलों को मिलाकर एक संयुक्त प्रणाली विकसित करने में जुटा हुआ है। इन तीनों ही प्रणालियों में सिलिकॉन चिप के क्षेत्र में हो रही प्रगति का सहारा लिया जा रहा है।

केंब्रिज का अनुसंधान दल सिर्फ सिलिकॉन चिप के क्षेत्र में हो रही प्रगति पर ही आश्रित नहीं है, इन दिनों वह डिजिटल सिग्नल प्रोसेसिंग प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हो रहे विकासों पर भी नजर टिकाये हुए है। इस प्रौद्योगिकी में ध्वनि का विश्लेषण करना काफी आसान हो जाता है, क्योंकि ध्वनि तरंगों को पहले विद्युत तरंगों में बदला जाता है और बाद में इन्हें अंकों में परिवर्तित कर दिया जाता है। अंकों से ध्वनि के स्तर को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

कैंसर कोशिकाएं

वैज्ञानिकों ने ऐसा प्रोटीन बनाने में सफलता पायी है जो कैंसर के कारण बनने वाले जीन पर अंकुश लगाकर कैंसर कोशिकाओं को पनपने से रोकता है। वैज्ञानिकों के अनुसार शरीर की प्रत्येक कोशिका में मौजूद जीन का व्यवहार महत्वपूर्ण होता है। जीन का व्यवहार शरीर में प्राकृतिक रूप से पैदा प्रोटीन पर निर्भर करता है। ये प्रोटीन जीन में उपस्थित डी.एन.ए. के साथ बिजली के आन-आफ स्विच की तरह एक विशेष क्रम में चिपके रहते हैं। अब से दस वर्ष पहले ब्रिटेन में कैंब्रिज स्थित शोध परिषद के आणविक जीव विज्ञान प्रयोगशाला के निदेशक सर ऐरोन कलग एवं उनके सहयोगी डेनिएला रोडरस ने पता लगाने में सफलता प्राप्त की थी कि ये प्रोटीन विशेष प्रकार के घटकों से तैयार होते हैं।

सर एरोन के दल ने जिंक फिंगर्स के जरिए नए प्रोटीन का निर्माण किया है, जो ल्यूकेमिया के लिए जिम्मेदार जीन के साथ चिपक जाता है। यह प्रोटीन कोशिका में प्रवेश करता है। वैज्ञानिकों ने दिखा दिया कि यह अनोखा प्रोटीन जीन को यदि सक्रिय कर सकता है तो निष्क्रिय भी।

होश में सर्जरी करने का उपकरण

खारकोव में बनाया गया उपकरण 'मोराज-जीरो-वन' सर्जरी के लिए है। इस उपकरण द्वारा बिना बेहोशी की दवा दिए रोगी की शल्य क्रिया करना सरल हो गया है तथा आपरेशन के समय खून बहने पर भी रोक लगाना संभव हो गया है। यह उपकरण कान के रोगों, स्त्री रोगों, त्वचा रोग तथा अन्य क्षेत्रों में उपयोग में लाया जाता है।

जीन बताएगा सेक्स

हैदराबाद स्थित सेन्टर फॉर सेल्युलर एंड मोलीक्यूलर बायोलॉजी (सी.सी.एम.बी.) के अनुसंधानकर्ताओं ने लिंग निर्धारण करने वाले जीन की खोज कर ली है। इस जीन की खोज करने वाले डा. लालजी सिंह और उनकी टीम ने इन्हें टेसटाइस आर्गनाइजर (टी.ओ.) का नाम दिया है। डा. लालजी सिंह के इस कार्य से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत को प्रतिष्ठा मिलेगी। सभी विद्यमान जीनों की पहचान करने और उनका अनुक्रम ज्ञात करने में यह खोज काफी मददगार साबित हो सकती है।

माना जाता है कि मानव शरीर में एक लाख जीन विद्यमान हैं। मानव शरीर तन्त्र इतना जटिल है कि एक-एक जीन और व्यक्तिक्रम या गुण को जोड़कर देखना हमेशा संभव नही है। अगर ऐसा हो जाए तो अनुसंधानकर्ताओं का काम और आसान हो जाएगा। अन्तर्निहित प्रतिरोधक तंत्रों की मौजूदगी के बारे में हाल ही में इम्यूनोलॉजी में शामिल जीन पर किए गए काम से पता चला जब 'जीन टारगेटिंग' नामक नई तरकीब से चुहियों पर प्रयोग किया गया। जब इस तरकीब से चुहियों में इन जीनों को नॉक आउट' किया गया तो अपेक्षित खामियां नजर नहीं आई।

बॉयोटेक्नोलॉजी विभाग ने मानवीय आनुवंशिकी पर एक कार्यबल का गठन किया है। जीनोम पर एक उप समिति भी बनाई गई है। इस ग्रुप ने डी.एन.ए. आधारित निदान और सलाह के लिए पन्द्रह ऐसे केन्द्रों की स्थापना करने की सिफारिश की है जो अस्पतालों से संबद्ध हों। इनमें थैलीसेमिया हेमोफीलिया और मायोटिक विकार जैसी बीमारियों का उपचार होगा। वंशानुगत विकारों के लिए जनसंख्या आधारित परीक्षण शुरू करने के कई आर्थिक फायदे भी हैं।

न सड़ने वाले टमाटर

आज प्रकृति पर इस सीमा तक काबू पा लिया गया है कि ऐसे टमाटर उपजाए जा सकते हैं जो बिल्कुल नहीं सड़ें और यही नहीं संकरण के जरिए ऐसी 'सुपर गाय' विकसित की जा सकती है जो आशा से कहीं ज्यादा दूध दे सके। कारण स्पष्ट है और वह है, जीन और उनकी प्रकृतिगत कार्य संरचना प्रणाली पर जैव वैज्ञानिकों का पूर्ण नियंत्रण।

अब वैज्ञानिक इस बात पर पूर्णतया आश्वस्त हैं कि जीन जनित असाध्य रोगों अथवा विकारों से मनुष्य को मुक्ति दिलाई जा सकती है। इस संबंध में वैज्ञानिक महसूस करते हैं कि उनको विश्व भर के विभिन्न वर्ण और समुदाय के लोगों की जीन संबंधी सम्पूर्ण प्रणाली का बारीकी से अध्ययन करना होगा। इस उद्देश्य के लिए उनको दुर्लभ किस्म के समूहों की जीन संबंधी असामान्य परिस्थितियों का पूरा लेखा जोखा भी रखना होगा। अन्ततोगत्वा आधुनिक जटिल बीमारियों से जीन प्रतिरक्षक के जरिए निबटा जा सकेगा। फिलहाल जीन संबंधी विशेषज्ञ इस बात से सशंकित है कि ये समूह मर भी सकते हैं और उसी के साथ जीन का गुप्त रहस्य चला जा सकता है।

मानव जीन से सम्बद्ध वैज्ञानिकों का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन सात सौ से भी अधिक मानव समूहों के मानव कोशिकाओं और मानव जीनों का दुर्लभ संग्रह तैयार कर उन्हें सुरक्षित रखने की कोशिश में जुटा हुआ है।

विज्ञान और मानव स्वास्थ्य की दिशा में यह एक विशाल एवं महत्वाकांक्षी परियोजना समझी गयी है। परन्तु कुछ दूसरे पक्षों को आशंका है कि इससे नस्ली मुद्दा खड़ा हो सकता है जबकि सार्वभौमिक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में विशुद्ध विज्ञानवाद की अवधारणा को मामूली सा समर्थन ही प्राप्त है। उत्तरवर्ती कोलंबिया के आर्हुआको समुदाय के लियोनोरा जलबाटा का इस पृष्ठभूमि में मत है कि आखिर हमारी भूमि, हमारी संस्कृति, हमारी विचारधारा और हमारी परंपराओं का पूर्णतया दोहन किया जा चुका है। यदि मानव जीन संबंधी अनुसंधान को गति दी गई तो यह शोषण का एक अन्य नमूना होगा। इस समय हमारा इस्तेमाल एक कच्ची सामग्री के बतौर हो रहा है।

समुद्र में औषधियों की खोज

समुद्र मंथन से अमृत निकालने की पौराणिक कल्पना अब भारतीय वैज्ञानिकों के प्रयास से साकार होने जा रही है। भारतीय वैज्ञानिक अमृत की खोज के लिए हिन्द महासागर की छानबीन कर रहे हैं। भारतीय वैज्ञानिकों को अमृत सरीखी कुछ औषधियों का पता भी चला है जो मलेरिया, कैंसर, ट्यूमर, मधुमेह, अल्प रक्त चाप, जिगर की बीमारियों, फाइलेरिया तथा जीवाणुओं और विषाणुओं से होने वाली बीमारियों के इलाज में रामबाण साबित हो सकती है। अब तक ऐसे जैव पदार्थों के ६३६ नमूनों की जांच की गयी है जिनमें से ६२१ में जीवाणुओं और विषाणुओं से होने वाली बीमारियों तथा अन्य रोगों के इलाज में काम आने वाली औषधियों के गुण पाए गए हैं।

संतरे के छिलकों से कैंसर की रोकथाम

मिशिगन और डेट्रॉइट के वैज्ञानिकों ने खोज की है कि संतरों के छिलकों के सत् को थोड़ा उपचारित करके इस्तेमाल करने से कैंसर की रोकथाम में मदद मिल सकती है। प्रोस्टेट ग्रंथि के कैंसर को अन्य भागों में पहुंचने से रोकने में यह सत् काफी कारगर होता है। औद्योगिक देशों में कैंसर का सबसे व्यापक रूप प्रोस्टेट का कैंसर ही है।

संतरों के छिलकों में एक रसायन पेक्टिन पाया जाता है। यह पदार्थ सेब के छिलके में भी होता है। वैज्ञानिकों ने पेक्टिन को पहले क्षार और फिर तेज़ाब के साथ उपचरित किया। इससे पेक्टिन अणु के छोटे–छोटे टुकड़े हो जाते हैं। यह चूहों में लाभदायक सिद्ध हुआ।

होमियोपैथिक दवाओं की फंगसरोधी क्रिया

भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय देशों में फंगस (कवक) संक्रमण की संभावना अधिक है क्योंकि यहां उसके प्रसार के लिए अनुकूल ताप और आर्द्रता बराबर पायी जाती है। मानव रोगकारक कवकों के विरुद्ध होमियोपैथिक दवाओं की जांच के लिए एक योजना बनायी गयी। संक्रमित रोगियों की जीभ, त्वचा और कान से नमूने प्राप्त किये गये उनका संवर्धन (कल्चर) किया गया। इससे तीन कवक प्राप्त किये गये। अलग किये गये इन तीन कवकों पर छह होमियोपैथिक दवाओं के असर की वैज्ञानिक जाँच की गयी।

कवक संक्रमणों के प्रति पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक प्रभाव्य पायी गयीं। इसी प्रकार ग्रामीणों की अपेक्षा शहरी लोगों में कवक संक्रमण ग्रहण की प्रवृत्ति ज्यादा पायी गयी। इसका कारण संभवतः यह है कि स्त्रियों का अधिकांश समय घरों के अंदर बीतता है। और औसत भारतीय घरों में स्थानाभाव और सीलन होती है। जिससे कवकों की वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण होता हैं इसके अतिरिक्त प्रसाधन सामग्रियों का अत्यधिक प्रयोग भी उन्हें कवक आक्रमण के लिए अनुकूल कर सकता है। ग्रामीण व्यक्तियों की अपेक्षा शहरी लोगों में कवक आक्रमण की अधिकता का कारण शहरों में प्रदूषण की अधिकता, साबुनों और डिटर्जेंटों का अधिक प्रयोग आदि हो सकता है।

अब पौधे सीधे हवा से नाइट्रोजन लेंगे

पौधों के अस्तित्व के लिए उन्हें नाइट्रोजन मिलना जरूरी है। वायुमण्डल में यह प्रभूत मात्रा में विद्यमान भी है। लेकिन पौधे इसका सीधे उपयोग नहीं कर सकते। वे कुछ खास किस्म के यौगिकों के रूप में ही इसका उपयोग कर सकते हैं। हवा की नाइट्रोजन को इन यौगिकों में रूपान्तरित करने की क्षमता पौधों में नहीं होती। दलहनी फसलों के पौधों की जड़ों में राइजोबियम नामक जीवाणु अपना बसेरा बना लेते हैं। ये हवा की नाइट्रोजन को ऐसे यौगिकों में बदलते रहते हैं जिनका पौधों द्वारा इस्तेमाल किया जा सके। इसलिए दलहनी फसलों को अलग से नाइट्रोजन खाद नहीं देनी पड़ती। अब वैज्ञानिक इस गुण को अनाजों में भी स्थानान्तरित करने का प्रयास कर रहे हैं। 'इन्टरनेशनल राइस नोडुलेशन ग्रुप' के सदस्यों ने हाल ही में प्रयोगशाला स्तर पर जो आरंभिक सफलता अर्जित की है, वह अगर खेतों में भी कारगर साबित होती है तो यह किसानों के लिये वरदान सिद्ध होगा।

ब्रिटिश, आस्ट्रेलियाई, चीनी और मैक्सिकन वैज्ञानिकों के एक दल ने दो ऐसे जीवाणुओं पता लगाया है जो अनाजों की जड़ों में प्रविष्ट होने और वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को ऐसे यौगिकों में रूपान्तरित करने में समर्थ हैं जिनका पौधे उपयोग कर सकते हैं। वैज्ञानिकों का मूल उद्देश्य धान के पौधों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की क्षमता पैदा करना था। यह तकनीक अन्य अनाजों के लिए भी उपयुक्त हो सकती है। एजोराइजोबियम कालिनोडान्स के प्रभेद को ओ.आर. ५५७१ और राइजोबियम के प्रभेद को ओ.आर. ५३१० नाम दिया गया है। जीवाणु इन पौधों में पार्श्व मूलिकाओं (लेटरल रूटलेट्स) के माध्यम से प्रविष्ट होते हैं। इस प्रक्रिया को 'क्रैक एन्ट्री' कहा जाता है। जीवाणु इन मूलिकाओं में काफी अन्दर तक प्रवेश कर जाते हैं। बाद में इनकी वृद्धि रुक जाती है और वे ग्रंथिकाओं में रूपान्तरित हो जाती है।

दलहनी पौधों के अलावा ये अन्य कुल के पौधों में भी सक्षम हो सकते हैं। नाटिघम विश्वविद्यालय के 'प्लांट जेनेटिक मैनिपुलेशन ग्रुप' के प्रमुख टेड कार्किंग ने इन जीवाणुओं का गेहूँ, धान, मक्का और रेपसीड से सम्पर्क कराया।

इन जीवाणु प्रभेदों की वास्तविक उपयोगिता का पता लगाने के लिए क्षेत्र-परीक्षण जल्द ही शुरू होने वाला है। गेहूँ के पौधों पर यह परीक्षण मिश्र में, धान पर भारत में और मक्का पर मैक्सिको में किया जायेगा। यदि प्रयोग सफल होते हैं तो इन फसलों को कृत्रिम रूप से दी जाने वाली नाइट्रोजन की मात्रा उत्तरोत्तर कम होती जायेगी। अनाजों की खेती में नाइट्रोजनी उर्वरकों पर अच्छी खासी धनराशि व्यय करनी पड़ती है। ये पर्यावरणीय दृष्टि से भी हानिकारक हैं। इसलिए इनके उपयोग में जितनी भी कमी हो वह स्वागत योग्य होगी।

हड्डियों में झांकती 'आर्थ्रोस्कोपी'

आर्थ्रोस्कोपी से जोड़ के अन्दर की दशा को देखकर बीमारी का पता लगाया और तीन से चार मिली मीटर का चीरा लगाकर आपरेशन किया जा सकता है। इससे पूरे जोड़ की खराबी या बीमारी का बिल्कुल सही-सही पता भी चलता है। इससे जोड़ के आस-पास के सामान्य हिस्सों में कोई क्षति भी नहीं होती हैं। इलाज के पुराने तरीकों में सिर्फ ऊपर से लक्षण देखकर या एक्सरे कराकर रोग निदान किया जाता था। अधिकतर बीमारियों में एक्सरे के लक्षण नहीं होते है या फिर बहुत देर से प्रकट होते है। इस कारण कभी-कभी जोड़ों की क्षति इतनी अधिक हो जाती है कि उसे आपरेशन से ठीक करना भी संभव नहीं होता है। आर्थ्रोस्कोपी में चीरा इतना छोटा होता है कि अक्सर टांके की जरूरत नहीं पड़ती है। और इसके बाद प्लास्टर चढ़ाने की भी जरूरत नहीं होती है।

मरीज इस चिकित्सा के कुछ घंटों के बाद घर जा कर दो तीन दिनों में अपनी सामान्य दिनचर्या शुरू कर सकता है। विकसित देशों में अब जोड़ों की ९५ प्रतिशत सर्जरी आर्थ्रोस्कोपी से ही की जाती है। परन्तु भारतवर्ष में यह सुविधा दिल्ली, बंबई, मद्रास और कलकत्ता तक ही सीमित है।

आर्थ्राईटिस (संधिशोथ) की गंभीर अवस्था में डाक्टर घुटने को बदलवाने की सलाह देते हैं। यह आपरेशन बहुत खर्चीला होता है। आर्थ्रोस्कोपी द्वारा जोड़ के घिसे और टूटे टुकड़े निकाले जा सकते है।

खिलाड़ियों में अक्सर जोड़ों में चोट लगने से खून या पानी जम जाता है, मांस फट जाता है या लिगामेंट और उपास्थि में क्षति हो जाती है। साधारणतः इसमें प्लास्टर चढ़ा दिया जाता है। आर्थ्रोस्कोपी से इसका आसानी से इलाज किया जा सकता है और इससे खिलाड़ी को अपनी खेलक्षमता बनाये रखने में कोई दिक्कत नहीं होती है।

खेती करने वाला रोबोट

ब्रिटेन के वैज्ञानिक इन दिनों ऐसा यंत्र मानव 'रोबोट' बनाने में जुटे हैं जो खेत-खलिहानों में किसानों की तरह काम कर सकेंगे। ये यंत्र मानव गाय, भैंस दुह सकेंगे, खुम्बी यानी मशरूम चुन कर कटाई और फली तथा सब्जियों की छंटाई और पैकिंग कर सकेंगे। यही नहीं जरूरत पड़ने पर वाहनों को रास्ता भी दिखा सकेंगे।

कम मुनाफे वाली खेती-बाड़ी के काम काज में यंत्र मानव के इस्तेमाल से किसानों पर काम का बोझ हल्का हो सकेगा, पैदावार में वृद्धि हो सकेगी और कृषि उत्पादों की कीमतें कम हो सकेंगी। ब्रिटेन की राजधानी लंदन से लगभग ८० किलोमीटर उत्तर स्थित सिलसो अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिक और इंजीनियर खेतों में काम कर सकने वाले यंत्र मानव के विकास के कार्य में जुटे हैं।

शरद ऋतुचर्या

वर्षा ऋतु के बाद शरद का आगमन होता है। सामान्यतः इसका काल १६ सितम्बर से १५ नवम्बर तक माना जाता है। यह ऋतु विसर्ग काल के मध्यम में आती है। इस समय सूर्य की तेजी कम हो जाती है और चन्द्रमा शक्तिशाली हो जाता है। मधुर, अम्ल, लवण व स्निग्ध रस तथा शरीर में बल की वृद्धि होने लगती है। इस ऋतु में मनुष्य का स्वास्थ्य और बल मध्यम होता है। इस ऋतु में नदी, तालाब, कुएं आदि का जल वर्षा काल की अपेक्षा स्वच्छ होता है।

इस काल में वर्षा में प्रकुपित वात का प्रशमन हो जाता है तथा पित्त और कफ प्रकुपित हो जाते हैं। इसके कारण फोड़े, चर्मरोग, अपच, अम्लपित्त, आमाशय व्रण, उदर शूल आदि रोग बढ़ सकते हैं। इस काल में अग्नि मंद होती है अतः भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिये। इस ऋतु में चन्द्रमा की किरणों को अमृत तुल्य माना गया है अतः चांदनी रात विशेषतः शरद पूर्णिमा की रात में भ्रमण उत्तम है पर रात को खुले में सोने से बचना चाहिए।

आहार विहार

इस ऋतु में मीठा, कसैला व तिक्त आहार लेना चाहिये। ज्वार, गेहूं, चावल से बने पदार्थ तथा सब्जियों में परवल, आलू, गोभी, बन्दगोभी, तुरई, लौकी, पालक आदि का प्रयोग करना चाहिये। मांस वर्ग में तीतर, हिरण, खरगोश उत्तम है।

इस ऋतु में प्रातः भ्रमण स्वास्थ्य के लिये उत्तम है। इस ऋतु में हल्का व्यायाम करना चाहिये, ठंडे जल से स्नान स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है।

सेवनीय वस्तुओं में सेब, अनार, नारियल, केला, आंवला, सिंघाड़ा, नीबू आदि फल तथा खीर, जलेबी, इमरती और खोये की मिठाइयां उत्तम है।

अपथ्य

शरद ऋतु में खट्टे, चरपरे तथा अत्यधिक नमकीन पदार्थों का सेवन न करें। इस ऋतु में तेल, शराब, खट्टे दही, उरद, तिल, सरसों, मछली आदि जलचर प्राणियों का मांस न सेवन करे। दिन में सोना तथा धूप और ओस से बचना चाहिये। बैंगन, लहसुन, हींग, सौंफ, कालीमिर्च, करेला, गरम मसाला, उरद से बने पदार्थ और कढ़ी इस ऋतु में स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।

शरद ऋतु में पंचकर्म

इस ऋतु में पित्त और कफ दोष प्रकुपित होते हैं। खान पान की और रहन–सहन की किसी भूल से रोग हो सकते हैं।

नित्य रात्रि में सोते समय ३ से ६ ग्राम तक त्रिफला या हरीतकी चूर्ण गरम पानी से लेने से पेट साफ रहता है तथा पित्त का निष्कासन होता है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रयुक्त रेचक औषधियों की भांति इनके कोई बुरे प्रभाव नहीं होते है। इसके विपरीत इनसे शरीर में रस रक्त आदि धातुओं की वृद्धि होती है तथा आयु बढ़ती है। विरेचन के लिये अविपत्तिकर चूर्ण भी उत्तम है।

पित्त दोष के लिये बस्ति चिकित्सक की देख रेख में ही करना चाहिये। पित्त की शांति के लिये रक्त मोक्षण भी कुशल चिकित्सक द्वारा कराया जा सकता है।

पाठकों के अनुभव

'जीवनीय' का प्रकाशन लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति के आंदोलन के मुखपत्र के रूप में प्रारंभ किया गया था। 'जीवनीय' देश भर में फैली स्वास्थ्य की स्थानीय परम्पराओं के संकलन, मूल्यांकन और संवर्धन के लिये प्रयास रत है। इस दिशा में हमें अपने पाठकों के सहयोग की बहुत आवश्यकता है। यदि आपके क्षेत्र में परंपरा से प्राप्त जानकारी के आधार पर स्वास्थ्य रक्षा और सामान्य रोगों की कोई चिकित्सा प्रचलित है तो हमें अवश्य लिखें। यदि आपको किसी रोग की चिकित्सा की परंपरागत विधि का अनुभव है तो हम उसे 'पाठकों के अनुभव' स्तम्भ में प्रकाशित भी कर सकते हैं।

हेमन्त ऋतु में हितकर दिनचर्या

वैद्य मनमीत सिंह, लखनऊ

शरद ऋतु के बाद हेमन्त का आगमन होता है, इसका समय लगभग १६ नवम्बर से १५ जनवरी (मार्गशीर्ष एवं पौष) के मध्य माना जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से हेमन्त को ऋतुओं में श्रेष्ठ कहा जाता है। सूर्य के दक्षिणायन में रहते हुए यह विसर्ग काल की अन्तिम ऋतु है, इसे शीत की ऋतु भी कहा जाता है। इस ऋतु में सूर्य मण्डल ओस के कणों से मलिन होता है, एवं सब दिशाओं में कोहरा रहता है। वायु शीतल होने के कारण रोंगटे खड़ी करती है। इस ऋतु में अनेक सुन्दर–सुन्दर पुष्प खिलते हैं व जन्तु हष्ट पुष्ट एवं कानातुर हो जाते हैं।

हेमन्त काल का शरीर पर प्रभाव

इस ऋतु में १६ उष्मांए (भ्राजक आदि ४, रसादि धातु गत ६ और पंचमहाभूतो की ५ अग्नियां) शीत एवं शीतल वायु के प्रभाव से बचने के लिए भीतर प्रविष्ट हो जाती है, जिससे जठराग्नि प्रबल (तीव्र) हो जाती है। अतः इस ऋतु में गुरू अन्नपान (शालि, षस्टिक, पीठी, इक्षुविकार, क्षीर विकार, उड़द, भैंस का दूध, सूअर का मांस आदि) का सेवन करना चाहिए। यदि पुष्टिकारक आहारों का प्रयोग नहीं किया जाता है तो उपयुक्त ईधन नहीं मिलने के कारण जठराग्नि मन्द हो सकती है या अत्याधिक तीक्ष्ण होकर रस–रक्त आदि धातुओं को पचाने लगती है। अतः धातुक्षय के कारण पक्षाघात आदि वात व्याधियों की सम्भावना बढ़ जाती है।

शीतल एवं रुक्ष वायु के कारण ठंड से शरीर में जकड़न, जुकाम एवं बुखार हो जाता है। त्वचा के रुक्ष होने पर वायु के शीतल गुण प्रविष्ट होने से वात प्रकोप, कास, श्वास, तमक श्वास, सन्धिवात, आमवात, पक्षाघात की सम्भावना होती है। इस ऋतु में प्रतिदिन स्नान करके कपड़े न बदलने से त्वचा में खुजली (स्केबीस) एवं अन्य चर्म रोगों की सम्भावना प्रबल रहती है।

हेमन्त ऋतु में आहार–विहार

शीत ऋतु ही मात्र ऐसी ऋतु है जिसमें हमें शरीर और स्वास्थ्य की स्थिति को सुधारने में प्रकृति से मदद मिलती है। इस ऋतु में तेज भूख लगने पर, कार्य में व्यस्त रहना और भूख मर जाने पर भोजन करना, शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अतः हमें स्निग्ध (चिकने), मधुर, लवण और अम्ल रस वाले पौष्टिक व बल बढ़ाने वाले पदार्थ– घी, दूध, मलाई, शहद, मिश्री, पुराना गुड़, रबड़ी, मालपुआ, हलवा, मुरब्बा, मौसमी फल, असगन्ध, मूसली, शतावरी, कौंच के बीज, शुद्ध शिलाजीत, रसायन एवं वाजीकारक योग लाभकर होते हैं।

इन दिनों में मालिश करने से त्वचा में स्निग्धता एवं कोमलता आती है साथ ही बल भी बढ़ता है। मालिश के लिए सरसों का तैल सर्वोत्तम है। कपूर मिलाकर मालिश करने से आमवात एवं सन्धिवात की वेदना में लाभ मिलता है। स्नान से पूर्व सप्ताह में एक या दो बार उबटन (सरसों, तिल, हरिद्रा) लगाने से लाभ मिलता है। स्वेदन करने से अंग प्रत्यंग की जकड़ाहट, क्रोध, आलस्य एवं शीतता दूर हो जाती है। स्नान गर्म जल से करना चाहिए। गर्म वस्त्रों को धारण करने से शीत से बचाव होता है। प्राणायाम करने से भी शीत का प्रकोप कम होता है। इस ऋतु में व्यायाम करने से शरीर में लघुता एवं कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। दिन में धूप में बैठना, रात्रि में कमरा गरम रखना एवं उष्ण स्थान पर निवास करना लाभकर है। अगर खुले स्थान में घूमने जायें तो ऊनी वस्त्रों से शरीर को ढक लें, एवं खुले वाहनों में न घूमें।

हेमन्त ऋतु में वर्जनीय

इस ऋतु में शीत के कारण वायु एवं कफ सम्बंधी विकार होने की प्रबल सम्भावना होती है, वायु बढ़ाने वाले द्रव्य, सत्तू, बरफ, कम खाना, रूखा, कड़वा, ठंडा अन्नपान, आलू, उड़द के बड़े, पुराना एवं शुष्क अन्न इस ऋतु में वर्जनीय है। भोजन कम करने से, अथवा भूख लगने पर भोजन न करने से, जठराग्नि शरीर की धातुओं को जलाने लगती है, अतः वात व्याधियों की सम्भावना बढ़ जाती है, अतः हमें ऐसा आहार विहार नहीं करना चाहिए, जिससे वात एवं कफ का प्रकोप हो। जब तक तीव्र ठंड न पड़े, अधिक गरिष्ठ एवं पौष्टिक आहार, रसायन एवं वाजीकारक द्रव्यों का प्रयोग कम करना चाहिए।

रात्रि में देर से भोजन करना, एवं देर तक जागना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। शीत में अति शीत, अति ऊष्ण जल से स्नान नहीं करना चाहिए। रात में कमरे को हीटर या एयर कंडीशन से गर्म कर सकते हैं परन्तु अंगीठी का प्रयोग सावधानी पूर्वक करें, कभी कभी बंद कमरे में अंगीठी जलाने से उसका धुआँ (कार्बन डाई आक्साइड एवं कार्बन मोनो आक्साईड) बाहर न निकल पाने से स्वास्थ्य के लिए हानिकर साबित होता है। रात में सोते समय मुंह ढक कर भी नहीं सोना चाहिए। तमक श्वास के रोगी इस ऋतु में शीतल जल से स्नान न करें, अन्यथा श्वास के वेगों के आने की प्रबल सम्भावना होती है।

स्वस्थ श्वसन तंत्र के लिये

सूर्य नमस्कार

सूर्य नमस्कार योगासनों की ऐसी श्रृंखला है जिससे सम्पूर्ण शारीरिक व्यायाम के साथ साथ सांस लेने की प्रक्रिया लयबद्ध होकर पूरा श्वसन तंत्र स्वस्थ रहता है। सूर्य नमस्कार आयु एवं शक्ति के अनुसार किया जा सकता है। युवा यह क्रिया शीघ्रता से १५ से २५ बार तक कर सकते हैं। गर्भावस्था तथा मासिक धर्म के दिनों में महिलाओं के लिये यह निषिद्ध हैं यदि पीठ में दर्द हो तो भी कुशल चिकित्सक की सलाह ले लें।

सम्पादक

वैसे तो सूर्य नमस्कार महज आसन एवं व्यायाम ही नहीं है। अपितु जैसा नाम से ही स्पष्ट है, साधना का भी एक महत्वपूर्ण अंग है। प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में उठकर सूर्य देव की वन्दना से शक्ति के आदि स्रोत से शक्ति लेने की भावना से ये १० आसन क्रियाएं करनी चाहिए। सूर्य नमस्कार की कुल १२ अवस्थाओं से शरीर के अंग प्रत्यंग का व्यायाम हो जाता है।

सूर्य नमस्कार हमेशा खुले और स्वच्छ स्थल पर बिना थके करना चाहिये। थकने पर थोड़ा आराम करना चाहिये। सूर्य नमस्कार करते समय हर बार पैर बदलते रहना चाहिये। ताकि प्रत्येक पैर का व्यायाम हो सके।

प्रत्येक सूर्यनमस्कार में दस आसन होते हैं :–

अवस्थानं जानुनासं
ततश्चोर्ध्वनिरीक्षणम्।
वपुस्तुलितपूर्वं च साष्टांग
नमनं परम् ।।
कशेरोर्विस्तरस्ततः।
पुनरूर्ध्वेक्षणादीनां व्युत्क्रमः
क्रमशो भवेत्।
इत्येतैरासनैः कुर्यात् सूर्यस्योपासनं नरः।।

अर्थात् प्रथम आसन अवस्थान (खड़े होना), दूसरा जानुनास (नाक को घुटने से लगाना), तीसरा ऊर्ध्वेक्षण (ऊपर की ओर

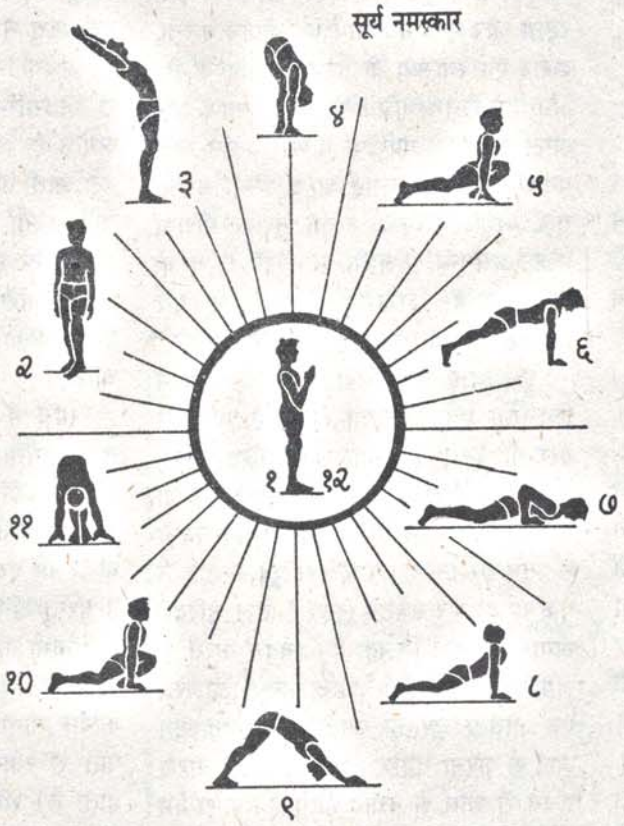

देखना), चौथा तुलितवपु (शरीर को सधा हुआ रखना), पांचवां साष्टांग (दण्डवत् करना), छठा कशेरुसंकोच (पीठ को मोड़ना), सातवां कशेरुविस्तार (पीठ को तानना), आठवां पुनः ऊर्ध्वेक्षण, नवां जानुनास और अंतिम अवस्थान है।

सूर्य नमस्कार करने की विधि

१: सूर्योदय के समय सूर्य की ओर मुँह करके शांत चित्त से सीधे खड़े होकर एड़ियाँ आपस में मिला लें। आगे से पंजे अलग रखें तथा हाथ नीचे लटके रहें। सीना तना हुआ, आँखें सामने की ओर। इसे "ताड़ासन" कहा जाता है।

इस आसन से कमर के रोग दूर होते हैं। पीठ मजबूत होती है। पैर सजग होते हैं। तथा एकाग्रता बढ़ती है।

२: हाथ को नमस्कार की मुद्रा में जोड़कर अंगूठे छाती से लगाकर पेट को अन्दर खींचकर कुंभक कर सीना तना रखें। इसे "नमस्कारासन" कहते हैं। इस आसन से स्वर साफ होता है व गले के रोग मिटते हैं।

३: कुंभक जारी रखें, अब दोनों हाथ जितना ऊपर ले जा सकें, ऊपर ले जाकर शरीर पीछे की ओर झुकाएँ। खुली आँखों से आकाश देखिये। इसे "पर्वतासन" कहते हैं।

इससे आँख की नसों में शक्ति आती है और कंधों के दोष दूर होते हैं।

४: अब दोनों हाथ नीचे लाकर उंगुलियों से

पैरों के अंगूठे छुएँ पर घुटने न मुड़ने पाएँ। कुंभक छोड़ते समय नाक से घुटनों को छूकर आवाज़ के साथ रेचक कीजिये। साँस नाक से ही छोड़ें। इसे "हस्तपादासन" कहते हैं।

इससे उंगलियाँ, हाथ, छाती मज़बूत बनते हैं, पेट को भी शक्ति मिलती है।

५: नाक से आवाज़ के साथ साँस खीचें, बायाँ पैर आगे ले जाएँ। दायाँ पैर पीछे तानें, पंजों के बल पर रहें। घुटना ज़मीन छुएं। दूसरी बार यही क्रिया दाएँ पैर से करें। सिर उठाकर अधिक से अधिक ऊपर देखें। इसे "एकपाद प्रसारणासन" कहते हैं। इससे कब्ज़ और यकृत के रोगों में लाभ होता है।

६: दोनों हाथ सामने की ओर जमीन पर जमाइये। उंगलियाँ सामने की ओर रखकर कूल्हे अधिक से अधिक ऊँचे उठाइये (कुंभक जारी रहे) इसे "भूधरासन" कहते हैं। इससे घुटनों, हाथ, पैर के दर्द मिटते हैं। कमर पतली होती है, पेट के करीब-करीब सभी रोगों में लाभ पहुँचता है।

७: कुंभक जारी रखते हुए हाथों पर सारे शरीर का भार डालिये व कुहनियाँ मोड़िये। ललाट और सीना जमीन को छूते हुए शरीर को भूमि के समतल लाइये। नाक और पेट जमीन को स्पर्श न करें। अब पूर्ण रेचक कीजिये। इसे "अष्टांग प्रणिपातासन" कहते हैं। यह हाथों को शक्ति देता है।

८: सिर और छाती को ऊपर ले जायें। साँस भीतर खींचते हुए सीना बाहर की ओर रखें व कुंभक कीजिये। शरीर का भार हाथों पर रहे। ऊपर देखिये फिर कुंभक कीजिये। इसे "भुजंगासन" कहा जाता है। यह शरीर में खून का दौरा नियमित करता व बढ़ाता है। आँखें चमकदार होती हैं, स्त्रियों के मासिक धर्म को नियमित करता है। रज और वीर्य की सभी त्रुटियों की दूर करता है।

९: कुंभक जारी रखें। हाथ और पैर ज़मीन में जमाइये। कूल्हे ऊपर उठाइये। ठोड़ी सीने से सटाइये। पेट अन्दर रहे।

इस आसन से जोड़ों का दर्द (सन्धिवात) होने का डर जाता रहता है व पैर मज़बूत हो जाते हैं।

१०: भूमि पर बैठकर बायीं टांग आगे, दायीं टांग पीछे करके उसे अधिक फैलाएँ। दोनों हाथों की उंगलियों से आगे वाले पैर को छूने का प्रयत्न करें। गर्दन दोनों बाँहों के बीच ऊपर की ओर रहे। पेट पूरी तरह दबना चाहिए। अब दाँयी टांग आगे लाएँ, बाँयी टांग पीछे ले जाएँ। दोनों टांगों को अधिक से अधिक फैलाएँ, दोनों हाथों की उंगलियों से आगे वाले पैर को छूने का प्रयत्न करें। इसे "एकपाद प्रसरणासन" कहते हैं। इससे पैरों की शक्ति व रक्तप्रवाह बढ़ता है। मेरुदण्ड लचीला होता है।

११: पेट भीतर खींचकर दोनों पैर जोड़िये। नाक घुटनों पर लगाइये। आवाज़ के साथ रेचक कीजिये, इसे "हस्तपादासन" कहते हैं। इससे उंगलियों, हाथ, छाती मज़बूत बनते हैं। पेट को भी शक्ति मिलती है।

१२: ध्वनि के साथ पूरक कीजिये। सीधे तनकर पैर और घुटने जोड़कर खड़े हो जाइये। हाथ नमस्कार की मुद्रा में छाती से सटाकर रखिये। यह पहले बताया "नमस्कारासन" ही है।

सूर्य नमस्कार के लाभ

- शीतकाल में सूर्य नमस्कार का अभ्यास करने से सर्दी, जुकाम, खाँसी आदि रोग पास नहीं आते व चेहरा तेजस्वी बनता है।
- नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। पेट के रोगों का नाश होता है तथा कंधों को शक्ति मिलती है।
- मन एकाग्र होता है।
- मेरुदण्ड में लचीलापन आता है तथा मांसपेशियाँ सबल होती हैं, रक्त संचरण तथा श्वास-प्रश्वास तेज़ होकर श्वास संस्थान की बीमारियों का नाश होता है।
- स्नायु तन्तु मज़बूत तथा पुष्ट होते हैं।
- शरीर में तेज-ओज-कांति बढ़ती है। उत्साह आता है।

हमें आशा है कि हमारे बाल-युवक-वृद्ध सभी पाठक सूर्य नमस्कार के नियमित अभ्यास से लाभ उठाकर अपने शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य का पूर्ण लाभ उठाते हुए सूर्य देव की तरह कांतिवान व नित्य शक्तिशाली रह सकेंगे।

लेखकों के लिये

"जीवनीय" में प्रकाशन हेतु लेख या अपने अनुभव भेजते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि रचना टाइप की हुई हो या उसकी लिखावट साफ-सुथरी व कागज के एक ओर ही हो। कृपया हाशिये की पर्याप्त जगह भी छोड़ें। भेजी गयी रचना मौलिक होनी आवश्यक है। रचनाओं पर निर्णय लेने में आठ से दस सप्ताह का समय लगता है अतः इस विषय पर बार-बार पत्र-व्यवहार न करें। अपनी रचना के साथ कृपया टिकट लगा एक लिफाफा अवश्य भेजें जिस पर आपका सही पता भी लिखा हो। अन्यथा रचना अस्वीकृत होने की स्थिति में वापस करने की कोई जिम्मेदारी हम नहीं ले सकेंगे।

जीवनीय प्रकाशन

ई-III/२४६, सेक्टर एच, अलीगंज, लखनऊ

अपने स्वास्थ्य की जांच स्वयं करें

हर एक व्यक्ति के दिमाग में शारीरिक स्वास्थ्य के अलग–अलग माप होते हैं। हम शारीरिक स्वास्थ्य के दस मानक टेस्ट दे रहे हैं। इनमें से प्रत्येक के पूर्णांक दिये गये हैं। आप इनके हिसाब से अपने को अंक दे सकते हैं। अपने को प्राप्त सभी अंकों को जोड़ लें। इनके योग के अनुसार आपका स्वास्थ्य निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

१००–१२० अंक – *आपका शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम है आप जो भी व्यायाम कर रहे हैं उसे जारी रखें।*

८०–९९ अंक – *आप अपने स्वास्थ्य में और सुधार कर सकते हैं। व्यायाम ठीक से और नियमित रूप से करें।*

५०–७९ अंक – *आप अपने शारीरिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। अपने लिये व्यायाम चुनें और प्रतिदिन नियमित रूप से उसे करें।*

०–४९ अंक – *आप अपने शरीर की चिन्ता नहीं करके सभी प्रकार के रोगों को आमन्त्रित कर रहे हैं। अपने लिये उचित व्यायाम चुनें और उसे आज से ही प्रारम्भ करें।*

१– कंधे सीधे रख कर खड़े हों और अपने सीने को पूरी तरह फुलायें। बगलों के नीचे से सीने की इसी अवस्था में नाप लें। अब अपनी कमर की नाप लें। नाप लेते समय पेट को सामान्य अवस्था में रखें उसे फुलायें या पिचकायें नहीं। आपके सीने की नाप कमर की नाप से कम से कम ५ इंच अधिक होनी चाहिये। (महिलाओं में यह अन्तर १० इंच होना चाहिए)

पूर्णांक - २५ अंक आपके अंक–

२– फर्श पर अपने पैर सामने की ओर सीधे रखकर बैठिये और आठ इंच चौड़ी किताब को अपने घुटनों के बीच दबा लीजिये। अब अपने पैर सीधे और जमीन से चिपके रखते हुए सामने की ओर झुकिये और माथा किताब के ऊपरी भाग से स्पर्श कराइये।

पूर्णांक– १० अंक आपके अंक–

३– अपने पैरों के अंगूठों पर खड़े हों, एड़ियां सटाकर रखें, आँखें बन्द रखें तथा हाथ कंधे की ऊंचाई पर सीधे फैला लें। इसी स्थिति में बिना पैरों को हिलाये डुलाये या आँखें खोले २० सेकेन्ड तक खड़े रहें।

पूर्णांक– १५ अंक आपके अंक–

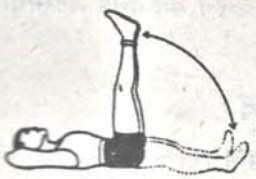

४– अपने हाथों को गर्दन के नीचे रखकर पीठ के बल लेटें और दोनों पैरों को बिना घुटने मोड़े ऊर्ध्वाधर खड़े करें। फिर बिना घुटने मोड़े फर्श तक लायें। यह क्रिया २० बार दोहरायें।

पूर्णांक– २० अंक आपके अंक–

५– करवट लेट कर अपने शरीर को सीधा रखते हुये एक हाथ (हाथ सीधा रखें) और पैर पर संतुलित करें। अपना दूसरा हाथ कमर पर रखें। ऊपर के पैर को क्षैतिज अवस्था में बिना घुटना मोड़े ले जायें। यह क्रिया २५ बार दोहरायें।

पूर्णांक– १५ अंक आपके अंक–

६– पेट के बल चेहरा नीचे कर के फर्श पर लेटें। अपनी उंगलियों को गले के पीछे रखकर पैर जमीन से चिपके रखते हुये चेहरा ऊपर तब तक उठायें जब आपकी दाढ़ी फर्श से १८ इंच की ऊँचाई पर पहुंच जाय।

पूर्णांक– २५ अंक आपके अंक–

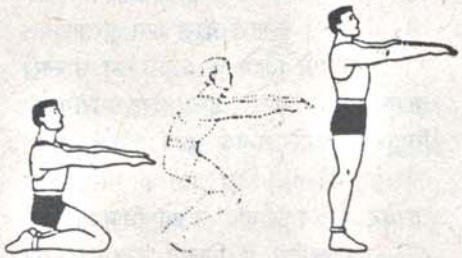

७– घुटने टेक कर जमीन पर इस तरह बैठें कि आपके तलवे ऊपर की ओर रहें। अपने हाथों को कंधों की सीध में सामने की ओर रखें हाथों को नीचे की ओर धक्का देते हुए उछल कर खड़े हों। इस स्थिति में संतुलन बनायें रखें और दोनों पैर एक साथ रखें।

पूर्णांक– १० अंक आपके अंक–

८– पीठ के बल लेट जायें, पैरों को सीधा रखें तथा हाथों को गर्दन के पीछे रखें। अब बैठ जायें। यह क्रिया २५ बार बिना रुके दोहरायें।

पूर्णांक– २० अंक आपके अंक–

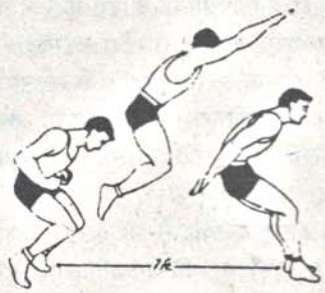

९– सीधे खड़े होकर आगे की ओर कूदें। कूदने के पहले दौड़े नहीं। आपकी कूद की दूरी आपकी लम्बाई के लगभग बराबर होनी चाहिए।

पूर्णांक– १० अंक आपके अंक–

१०– एक ही स्थान पर ६० सेकन्ड अपने पैर जमीन से कम से कम ४ इंच उठाते हुए दौड़ें फिर तीन बार गहरी सांस लें। अब ६० सेकन्ड तक सांस रोंके।

पूर्णांक– ५० अंक आपके अंक–

गतांक से आगे

आयुर्वेद कल, आज और कल

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे

आयुर्वेद मनुष्य की उत्पत्ति के समय से प्राप्त अनुभवों का भंडार है। नये अनुभूत प्रयोगों द्वारा आयुर्वेद का विषय–विस्तार होता रहा है और यह परंपरा निरन्तर चलती रही है। इसीलिए आयुर्वेद में प्रारंभ से ही स्वस्थवृत्त पर विशेष बल दिया जाता रहा है। यदि आहार–विहार पर मनुष्य पर्याप्त नियंत्रण रखेगा तो उसके दोष, धातु, मल, अग्नि सदैव साम्यावस्था में रहेंगे। यह साम्यावस्था अपने–आपमें रोग प्रतिबन्धक है।

आज संसार में आयुर्वेद के अलावा जो अन्य चिकित्सा पद्धतियां हैं उनमें तीन प्रमुख हैं–

१. एलोपैथी
२. होम्योपैथी
३. यूनानी।

जहां तक एलोपैथी और होम्योपैथी का संबंध है, वे केवल रोग चिकित्सा हेतु ही प्रादुर्भूत हुई हैं। एलोपैथी विषम चिकित्सा है और होम्योपैथी सम चिकित्सा है। ये दोनों चिकित्सा पद्धतियां अपने अपने मूल सिद्धान्त के आधार पर चिकित्सा का विधान करती हैं। यदि इन चिकित्सा पद्धतियों के सिद्धान्तों पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जायगा कि आयुर्वेद में ये दोनों सिद्धान्त समाविष्ट हैं। आयुर्वेद में विषम चिकित्सा के साथ ही सम चिकित्सा के भी प्रयोग हैं। अतः जहां उक्त चिकित्सा पद्धतियां एकांगी हैं, वहीं आयुर्वेद समष्टि पर आधारित हैं। जहां तक यूनानी चिकित्सा पद्धति का संबंध है, वह देशभेद और कालभेद से आयुर्वेद से अलग हुई–सी लगती है, अन्यथा दोनों का सैद्धान्तिक आधार एक ही है।

यह तो हुआ आयुर्वेद के संबंध में संक्षिप्त निवेदन। अब आयुर्वेद के भूतकालिक 'कल' के बारे में विवरण देना आवश्यक है तभी हम आयुर्वेद के 'आज' और भविष्यकालीन 'कल' का आकलन कर सकेंगे। सामान्यतया जब भूतकाल की बात की जाती है तो वह अनद्यतन परोक्ष और सुदूरवर्ती ही होता है। परन्तु आयुर्वेद के 'आज' के विषय में तभी सोचा जा सकता है, जब भूतकाल के संबंध में भी आयुर्वेद के प्रादुर्भाव से लेकर अब तक के संपूर्ण काल में हुई प्रगति/दुर्गति का विवेचन किया जाय। इस संक्षिप्त लेख में संपूर्ण इतिहास की विवेचना असंभव है, अतः 'आज' की सही स्थिति तक पहुंचने के लिए इतिहास के मुख्य–मुख्य सोपानों का उल्लेख मात्र किया जा सकेगा।

भारतीय विचार धारा के अनुसार सभी शास्त्रों या ज्ञान–विज्ञान संबंधी समस्त उत्पादनों का प्रादुर्भाव हिरण्यगर्भ ब्रह्मा से हुआ है। आयुर्वेद ऋग्वेद या अथर्ववेद का उपवेद तो कहा ही गया है परन्तु उसे पंचमवेद की संज्ञा गई है। चरक के अनुसार 'आयु' अर्थात् जीवन के प्रारंभ से ही आयुर्वेद का अस्तित्व है। सुश्रुत के अनुसार ब्रह्मा ने सृष्टि के पूर्व ही आयुर्वेद का प्रणयन किया था। चरकाचार्य ने कहा है कि ब्रह्मा से दक्षप्रजापति ने, दक्ष से अश्विनी कुमारों ने, उनसे इन्द्र ने, इन्द्र से अत्रि ने, अत्रि से आत्रेय पुनर्वसु ने और पुनर्वसु से अग्निवेश आदि ने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। सुश्रुत संहिता में वर्णित क्रम के अनुसार इन्द्र तक क्रम वही है। इन्द्र से धन्वन्तरि ने और धन्वन्तरि से सुश्रुतादि ने आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार चिकित्सा एवं शल्य तंत्र के दो संप्रदाय अलग हुए जिन्हें क्रमशः आत्रेय संप्रदाय और धान्वन्तर संप्रदाय कहा जाने लगा।

आयुर्वेद का प्रादुर्भाव ब्रह्मा से होने और उपवेद या पंचम वेद कहे जाने से स्पष्ट है कि इसके बीज वेदों में हैं। लोकमान्य तिलक के अनुसार ऋग्वेद का काल ई.पू. ६००० से ४००० तक है और अथर्ववेद का काल ई.पू. २००० है। अथर्ववेद में परीक्षित् का उल्लेख होने के कारण कुछ विद्वान् अथर्ववेद का काल ई.पू. १५०० मानते हैं।

ऋग्वेद में यत्र तत्र आयुर्वेद से संबद्ध ज्ञान का उल्लेख है। रुद्र, अग्नि, इन्द्र, वरुण को तथा विशेष रूप से अश्विनी कुमारों को 'देवानां भिषजौ' कहा गया है। स्पष्ट है ऋग्वेद के समय भिषक् संस्था विद्यमान थी। अश्विनी कुमारों द्वारा अंग प्रत्यारोपण और संजीवनी विद्या के प्रयोग का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। इन्द्र द्वारा चर्मरोग का निवारण, खालित्यनाश, अंधे को दृष्टिदान और पंगु को गति दिये जाने का भी उल्लेख ऋग्वेद में है। ऋग्वेद में औषधिसूक्त (10/47) उल्लेखनीय है जिसमें औषधियों का स्वरूप, स्थान, कर्म, वर्गीकरण और प्रयोग विहित है। भिषक दैव व्यपाश्रय और युक्ति व्यपाश्रय दोनों प्रकार की चिकित्सा करते थे। वे रोगोत्पादक राक्षसों का विनाश और औषधियों द्वारा रोग निवारण करते थे।

विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः (ऋ १०/९७/६) रोगों के कारण के रूप में दोष और कृमि का भी उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। इसके अलावा पशुचिकित्सा, सूर्य चिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्निचिकित्सा और वायुचिकित्सा का भी संक्षिप्त उल्लेख बीजरूप में ऋग्वेद में विद्यमान है।

इसी प्रकार यजुर्वेद में भी बलास, अर्श आदि रोग, शरीराग, त्रिदोषवाद आदि के संकेत उपलब्ध होते हैं। दृष्टि प्राप्ति, यक्ष्मा, राजयक्ष्मा और उन्माद के उल्लेख महत्वपूर्ण हैं।

अथर्ववेद आयुर्वेद का स्रोत है अतः उसमें आयुर्वेद संबंधी सामग्री प्रचुर मात्रा में है। ऋग्वेद में जो आयुर्वेद संबंधी तथ्य संकेत रूप में हैं उनका विशदीकरण अथर्ववेद में

हुआ है। अथर्ववेद में त्रिदोषवाद का स्पष्ट रूप लक्षित होता है। उसमें वात के पांच प्रकार पित्त और बलास (कफ) वर्णित हैं। विश्वंभर आदि तीन अग्नियों का उल्लेख अथर्ववेद में उपलब्ध है। सायण ने विश्वंभर अग्नि को अपनी व्याख्या में जाठराग्नि कहा है। ओज, रस, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, शुक्र आदि का स्पष्ट उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। शरीर के विभिन्न अंग प्रत्यंग भी इसमें वर्णित हैं। रोगों का भी पर्याप्त वर्णन अथर्ववेद में मिलता है। शपथ्य और वरुण्य अर्थात् आहारादिनिमित्त और शापादि जन्य रोगों का उल्लेख है। अधिष्ठान भेद देशभेद से विभिन्न रोगों का और सन्तत, तृतीयक, अन्येद्युष्क आदि ज्वरों का भी वर्णन इसमें उपलब्ध है।

अथर्ववेद में क्रिमियों का वर्गीकरण सूक्ष्म और दुर्लक्ष्य भेद तथा उनके अंग भी निर्दिष्ट हैं। क्रिमियों से उत्पन्न रोगों के उपचार का विधान दिया गया है। अथर्ववेद में प्रसूति सुखपूर्वक होने के लिए मंत्र हैं। विषविज्ञान शल्य और शालाक्य तंत्र, अक्षिरोग, रसायन, वाजीकरण आदि भी इसमें यंत्र तंत्र उपलब्ध हैं। अथर्व वेद में ३०० औषधियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वेदों के काल से ही आयुर्वेद प्रचार में था। अंगप्रत्यारोपण, संजीवनी विद्या, चर्मरोग निवारण, पंगुता दूर करना, दृष्टिदान आदि वर्णनों से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में यद्यपि आयुर्वेद की विद्या पूर्णरूप से अलग नहीं थी तथापि चिकित्सा के क्षेत्र में पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध था और प्रायोगिक दृष्टि से भी आयुर्वेद समृद्ध था।

वैदिक काल की समाप्ति पर आयुर्वेद को उपवेद या पंचम वेद के रूप में माना जाने लगा। आयुर्वेद संबंधी ज्ञान को, जो मौखिक परंपरा के रूप में प्रचलित था, एकत्र कर संक्षेप में "तंत्र" के रूप में सुरक्षित किया गया। अग्निवेश तंत्र इसी का एक उदाहरण है। इन्हीं तंत्रों का विशदीकरण और उपबृंहण कर भविष्य में प्रतिसंस्कारों के पश्चात् संहिताओं का प्रादुर्भाव हुआ।

सुश्रुत संहिता के मूल उपदेष्टा धन्वन्तरि थे। वेदों में जो महत्व भिषक के रूप में अश्विनी कुमारों को प्राप्त था, पौराणिक काल में वही महत्व धन्वन्तरि को प्राप्त हुआ। धन्वन्तरि से प्रसृत ज्ञान को आगे चलकर आठ अंगों में विभाजित किया गया जिसमें एक शल्यतंत्र भी था। इसी तंत्र को प्रमुखता देते हुए धान्वंतर संप्रदाय में काशिराज दिवोदासने, जिन्हें धन्वन्तरि द्वितीय भी कहा जाता है, आयुर्वेद को एक विशिष्ट रूप प्रदान किया और अपने बारह शिष्यों को पढ़ाया। वृद्ध सुश्रुत भी उनमें से एक थे। धान्वन्तर संप्रदाय के तंत्र को, जिसे दिवोदास ने व्यवस्थित कर सुश्रुत को प्रदान किया उपबृंहित कर वृद्धसुश्रुत ने संकलन किया जो सुश्रुत संहिता कहलाई और शल्यतंत्र के उपजीव्य ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हुई। कालक्रम की दृष्टि से दिवोदास और वृद्धसुश्रुत का काल ई. पू. १५००–१००० कहा जाता है। सुश्रुत ने ईस्वीय दूसरी शती में इस संहिता का प्रतिसंस्कार किया। पांचवीं शती में नागार्जुन द्वारा इस संहिता का प्रति संस्कार हुआ। पुनः दसवीं शती में चन्द्रट ने इस संहिता का संस्कार किया जो इस प्रकार धान्वन्तर संप्रदाय के अधीन शल्यतंत्र के आधार भूत ग्रंथ के रूप में ई.पू. १५०० से ईसवी १०वीं शती तक उपबृंहित और प्रतिसंस्कृत रूप में हमें उपलब्ध है।

इसी प्रकार पुनर्वसु आत्रेय द्वारा जो ज्ञान अपने शिष्यों को प्रदान किया गया उसे आत्रेय संप्रदाय कहते हैं। आत्रेय के शिष्य अग्निवेश ने उन उपदेशों को तंत्ररूप में निबद्ध किया, जिसे अग्निवेश तंत्र कहा गया। आत्रेय के अन्य शिष्यों ने भी उन उपदेशों को अपने–अपने ढंगों से संकलित कर अलग–अलग तंत्रों की रचना की। इनमें अग्निवेश तंत्र, जो सूत्ररूप में था, सर्वाधिक प्रचारित हुआ। महर्षि चरक ने अग्निवेश तंत्र पर भाष्य लिखकर उसे उपबृंहित किया। इसे बाद में चरक संहिता कहा जाने लगा। दृढबल ने चरक संहिता का प्रतिसंस्कार किया। इतिहासकारों ने अग्निवेश का काल ई.पू. १००० चरक का काल ई.पू. २०० और दृढबल का काल ईसवीय चौथी शती माना है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आत्रेय संप्रदाय के अधीन काय चिकित्सा और धन्वन्तर संप्रदाय के अधीन शल्य तंत्र के संहिता ग्रन्थों का विकास, उपबृंहण और संस्कार/प्रतिसंस्कार कालक्रम की दृष्टि से समानान्तर और समसामयिक रूप से होता रहा।

सुश्रुत संहिता और चरक संहिता ये आयुर्वेद के दो आधार हैं। अतः इन संहिताओं में वर्णित विषयों का आकलन इतिहास की दृष्टि से नितान्त अभीष्ट है। सुश्रुत संहिता आकर ग्रन्थ मानी जाती है। वाग्भट नैषदिचरित में इसका उल्लेख है। कम्बोडिया के राजा यशोवर्मन् (८८९–९०० ई.) के शिलालेख में भी सुश्रुत का नाम आदरपूर्वक लिया गया है। अरबी चिकित्सक रेजस की कृतियों में सुश्रुतसंहिता उद्धृत है। यह शल्य प्रधान ग्रन्थ है जिससे शल्य चिकित्सा की तत्कालीन समुन्नत स्थिति प्रकट होती है। शवच्छेद, व्रणितागार, यन्त्र कर्म, शस्त्र कर्म, संधान शल्य, क्षार, अग्नि–जलौका का उपयोग इसकी विशेषताएं है।

संधानशल्य आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी का ही रूप था। शारीर के संबंध में सुश्रुत संहिता अप्रतिम समझी जाती है। इसके अलावा काय चिकित्सा, स्वस्थवृत्त, अगदतंत्र, भैषज्य कल्पना के अनेक विशिष्ट प्रयोग इसमें वर्णित है। 'समदोष : समाग्निश्च स्वस्थ की यह परिभाषा सुश्रुत संहिता की ही देन है। द्रव्यगुण विज्ञान के क्षेत्र में भी सुश्रुत संहिता में रस, गुण, वीर्य, विपाक का सविस्तार विवेचन किया गया है। सुश्रुत संहिता में कुछ नयी औषधियों का भी समावेश दृष्टिगोचर होता है। द्रव्यों का वर्गीकरण और खनिज द्रव्यों का त्रपवादिगण इसकी विशेषता है। इस प्रकार सुश्रुत संहिता शल्यतंत्र और शारीर का मूलग्रंथ है और भारतीय आयुर्वेद में इसका स्थान अक्षुण्ण है।

चरक संहिता का स्थान भी आयुर्वेद में अक्षुण्ण और अप्रतिम है। इसमें मुख्य रूप से कायचिकित्सा का प्रतिपादन हुआ है। आयुर्वेदीय सिद्धान्तों का अत्यन्त गंभीर विवेचन इसमें उपलब्ध है। वाग्भट ने चरक

संहिता को प्रथम स्थान दिया है। नैषध चरित में इसका उल्लेख है। फारसी और अरबी में इसका अनुवाद हुआ था। अलबरूनी ने भी इसका ससम्मान उल्लेख किया है।

चरक संहिता में संभाषा परिषद के संबंध में महत्वपूर्ण विचार हैं उससे तत्कालीन वैज्ञानिक शोध समीक्षा और आपसी विचार–विमर्श और अनुभवों के आदान–प्रदान को कितना महत्व दिया जाता था यह स्पष्ट हो जाता है। चरक संहिता में त्रिदोष सिद्धान्त को व्यवस्थित और वैज्ञानिक रूप दिया गया है। पंच महाभूत और रस गुणवीर्य विपाक के सिद्धान्तों का भी वैज्ञानिक निरूपण चरक संहिता में मिलता है। चरक संहिता में परीक्षणात्मक दृष्टिकोण को अपनाया गया है। इसमें शरीर के साथ ही मानस को भी महत्व दिया गया है। अतः चेंतना सहित समष्टि पुरुष की चिकित्सा का इसमें विधान हैं। रोगों के पूर्वरूप, संप्राप्ति और उपशय का विवेचन करते हुए निदान की महत्ता प्रतिष्ठित की गई है। दशविध परीक्षा चरक संहिता की महत्वपूर्ण देन है। इसमें प्राकृतिक चिकित्सा पर बल दिया गया हैं अतः स्वभावो परमवाद को महत्व दिया गया है। औषधियां, आचार रसायन सद्वृत्त चरकसंहिता की देन है। इस प्रकार स्पष्ट है कि चरक संहिता ने आयुर्वेद को पूर्णतया वैज्ञानिक आधार प्रदान किया है। अतः इसे युगप्रवर्तक ग्रन्थ कहा जाता है।

उसी समय भेल, हारीत आदि अन्य महर्षियों द्वारा भी संहिताओं की रचना हुई परन्तु महत्व और लोकप्रियता सुश्रुत संहिता और चरक संहिता को ही प्राप्त हुई जिसके कारण अन्य संहिताओं का प्रचलन अधिक न हो सका।

सुश्रुत संहिता और चरक संहिता को आधार मान कर परवर्तीकाल में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई और इन संहिताओं पर अनेक टीकाएं भी लिखीं गई, जिनसे आयुर्वेद का उपबृंहण चलता रहा।

(क्रमशः)

स्लेट-पेन्सिल उद्योग में मरते लोग

साक्षर बनने के लिए स्लेट और उसकी पेन्सिल अनिवार्य है। इनके बिना बच्चे–बच्चियों को अक्षराभ्यास ही कराया नहीं जा सकता। मगर क्या हम जानते हैं कि प्रतिवर्ष औसतन कितने लोग इस उद्योग के चलते बेमौत मर रहे हैं ?

मध्य प्रदेश में मंदसौर से नीमच की ओर चलने पर आसमान में एक अजीब सी धूल उड़ती मिलती है। यहां खदानों में एक परतदार मिट्टी मिलती है जिसे तोड़कर कारखानों में पहुँचाया जाता है जहां उनकी कटाई–छंटाई व सफाई करने के बाद स्लेट और पेन्सिल का निर्माण होता है।

कारखाने ज्यादातर खुले आसमान के नीचे और कहीं–कहीं छप्परों में भी होते हैं। छेनी–हथौड़ी, कुदाल, कटर–मशीन आदि इनके यंत्र हैं। कहीं–कहीं विद्युत मोटर और एक्जास्ट पंखे भी लगे हैं। मुल्तानपुरा बोत–लगंज, पिपल्यामंडी, गुजरदा, बुगलिया आदि १४ गांवों में इन कारखानों की भरमार है। अब मंदसौर वालों ने राजस्थान के प्रतापगढ़ और मुखमपुरा में भी धंधा फैलाया है।

मुल्तानपुरा सबसे बड़ा केन्द्र है क्योंकि यहां स्लेट मिट्टी की खदानें हैं। यहां छोटे–छोटे १० कारखाने हैं जो २४ घंटे चलते हैं। यहां सभी के लिए काम उपलब्ध है। सबसे खतरनाक काम कटर का है जिसे सीधे धूल का सामना करना पड़ता है। मुल्तानपुरा को लोग विधवाओं का गांव भी कहते हैं क्योंकि यहां विधवाओं की संख्या बहुत अधिक हैं। कटर ज्यादा तर युवा होते हैं और युवावस्था में ही मर जाते हैं।

सिलिका धूल से होने वाली बीमारी को सिलिकोसिस कहते हैं। सिलिकोसिस का मरीज कभी भी क्षय रोग का शिकार हो सकता है। सिलिकोसिस और क्षय में विशेष अंतर नहीं है। खांसी, सीने में दर्द, हल्का बुखार, कमज़ोरी–ये प्रारंभिक लक्षण हैं। सात–आठ साल काम करने पर ये लक्षण प्रकट होते हैं और २–४ साल बाद मौत हो जाती है। सिलिका के वे कण जो व्यास में ०.५ मि.मि. से कम हैं सबसे ज्यादा खतरनाक होते हैं। ये फेफड़ों के ऊतकों में जमने लगते हैं। इससे सास लेना मुश्किल हो जाता है। ६५ प्रतिशत मरीज़ों की उम्र २५ वर्ष से कम है।

गांधी स्लेट पेन्सिल वर्क्स नामक एक फैक्टरी में बी.एच.ई.एल. द्वारा निर्मित धूल प्रदूषण नियंत्रण यंत्र लगाया गया है जिससे धूल का स्तर वहां लगभग सामान्य हो गया। श्रमिक इसका लाभ महसूस कर रहे हैं। इस यंत्र से एक साथ कई कटर मशीनों को जोड़ा जा सकता है। पर इस खर्च को उठाने के लिए बाकी के कारखानेदार तैयार नहीं हैं।

मुल्तानपुरा में एक–दो व्यक्ति ही ऐसे हैं जो बूढ़े हैं और–जीवित हैं बाकी लोग तो बूढ़े होने से पहले ही दिवंगत हो जाते हैं। इन जीवित बूढ़ों का कहना है कि पहले बिजली न होने से पहिए वाले तरीके से पेंसिल बनायी जाती थी जिससे धूल कम उड़ती थी और कम लोग मरते थे। आज बिजली की मशीन से जितनी तेजी से पेंसिल बनने लगी उतनी ही तेजी से लोग कब्रिस्तान की ओर जाने लगे हैं। यह जरूर है कि इन मशीनों से उत्पादन बढ़ा है और मेहनत भी कम लगती है।

आज औसतन कारखानों में १०–१२ लोग काम करते हैं। कटर का मुख्य काम पुरूष करते हैं। बाकी काम के लिए औरतों और बच्चों तक का प्रयोग किया जाता है। कटर को प्रतिदिन ३५ रु. तक की मजदूरी मिलती है और बाकी को १०–१२ रुपये।

म. प्र. स्लेट पेंसिल कर्मकार कल्याण मंडल का गठन सरकार ने इन मजदूरों की बस्तियों में शिक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से किया है। इस मण्डल की सिफारिश पर मृतक व्यक्ति के परिवार को ६००० रु. दिया जाता है। उसके आश्रित को ३०० रु. पेंशन भी दी जाती है। ***स्रोत फीचर्स से साभार***

टायफायड नियंत्रण

आज तीसरी दुनिया में अर्थात् विकासशील और उष्ण कटिबंधीय देशों में टायफायड बुखार का बड़ा जोर है। झुग्गी–बस्तियों की वृद्धि, अपर्याप्त जल आपूर्ति और सफाई का अभाव टायफायड के जीवाणु साल्मोनेला की उत्पत्ति और वृद्धि के लिए बहुत उपयोगी होता है। साल्मोनेला मल–मुख से हमारे शरीर में प्रवेश कर तीन–चार दिनों में रक्त की धारा में तैरते–तैरते लिवर में पहुंच जाता है।

यकृत् में पहुंचने के बाद यह वहां बढ़ने लगता है जिससे बदन दर्द और उल्टियां होती हैं। यदि इस स्थिति में रोग का निदान हो जाय और रोगी को टायफायड–रोधी दवाएं दे दी जाती हैं तो बैक्टीरिया अपनी मंजिल आंतों तक पहुंचने में नाकाम रह सकते हैं जहां वे आठवें – नवें दिन तक घाव उत्पन्न कर देते हैं। घावों की उत्पत्ति रोगी और चिकित्सक दोनों के लिए चिंताजनक है क्योंकि इनके फूटने से आंतों से खून आ सकता है और आंतों में छेद हो सकते हैं। इससे कभी–कभी मृत्यु तक हो जाती है।

जब आंतों में घाव बन रहे होते हैं तब रोगी को पेट में तकलीफ का अनुभव होता है। रक्त में कणों की संख्या कम हो जाती है और तिल्ली बढ़ जाती हैं। यदि टायफायड की चिकित्सा समय पर न की जाय तो बुखार शुरू होने के मात्र दो सप्ताह बाद जीवाणु तीव्र वक्ष संकुलन उत्पन्न कर सकते हैं। इससे किडनी और जिगर की हानि हो सकती है और मस्तिष्क की विकृति तक हो सकती है।

कुछ व्यक्ति साल्मोनेला जीवाणु के वाहक होते हैं। प्रायः ये वे लोग होते हैं जिन्हें एक बार टायफायड हो चुका होता है। उनकी आंतों में जीवाणु बसते हैं और पाखाने के रास्ते निकला करते हैं। यदि पाखाने की निकास व्यवस्था सही न हो तो ये पेयजल, दूध और खाद्य पदार्थो तक में पहुंच जाते हैं। इस दिशा में मक्खियों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है जो कूड़े–कचरे मल–मूत्र आदि पर बैठने के बाद हमारे पेय एवं खाद्य पदार्थो पर बैठकर उन्हें दूषित और रोगकारक बना देती हैं। ये जीवाणु टायफायड के रोगी के पित्ताशय में बरसों जीवित रह सकते हैं और धीरे–धीरे उसके मल के साथ निकलते भी रहते हैं। जब कोई स्वस्थ व्यक्ति दूषित खाद्य या पेय का सेवन कर लेता है उसके १०–१५ दिनों के बाद लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

प्रारंभ में जीवाणु रक्तप्रवाह में बहते हैं। वे जितना ही प्रवाह में बहेंगे और संख्या में अधिक होगें उतना ही नुकसान अधिक करेंगे। कुछ दिनों बाद ये अंत के लसीका – ऊतक में अपनी बस्ती बसा लेते हैं। इससे सूजन, लाली और घाव उत्पन्न होते हैं। इनसे खून आता है। इस रोग का मुख्य विकार आंतों की सूजन है।

प्रथम सप्ताह में बुखार धीरे–धीरे बढ़ता है। बुखार घटता है पर खतम नहीं होता। शाम को प्रायः बुखार तेज़ रहता है। कमजोरी, सरदर्द, बदन दर्द, चक्कर आना, खांसी और नक्सीर फूटना भी संभव है। ज्वर के तेज होने पर नाड़ी मंद हो जाती है।

दूसरे सप्ताह में छाती के निचले भाग और पीठ पर दूर–दूर गुलाबी रंग के दाने निकलते हैं जो दबाने पर गायब हो जाते हैं। ये दाने चमकते हैं और मोतियों जैसे लगते हैं। इसी से रोग का नाम मोतीझरा भी है। ये दाने २–३ दिन में गायब हो जाते हैं। तिल्ली बढ़ जाती है। कब्ज की जगह दस्त आने लगते हैं। पेट फूल आता है। पेट के निचले दाएं भाग में दबाने से दर्द होता है।

तीसरे सप्ताह रोगी के रक्त में विषैले पदार्थ बढ़ जाते हैं। मल के साथ खून आ सकता है। रोगी बहुत ही कमजोर और बेहोश हो सकता है।

ऐसी स्थिति में चिकित्सक का परामर्श प्राप्त करें। रोगी को शैय्या विश्राम और लघु सुपाच्य आहार दें।

रोकथाम के उपाय

- साफ खाना और सफाईदार रहन–सहन।
- मल–जल निकास की समुचित व्यवस्था।
- खुली मिठाइयां, कटे फल, सड़े–गले फल साग–सब्जियां और दूषित पानी का परित्याग।
- मक्खियों से सुरक्षा का प्रबंध।
- टायफायड की महामारी के फैलने पर टीका लगवा लेना।

जीवनीय औषधियां

हमारे बहुत से पाठक हमें अक्सर शुद्ध औषधियों और औषधीय पदार्थो के न मिलने की शिकायत करते रहे हैं। अतः हम आपको कच्ची औषधियां और आपकी विशेष समस्याओं के निदान हेतु अपने वैद्यों द्वारा निर्मित औषधियां बहुत कम मूल्य पर उपलब्ध कराने का प्रस्ताव कर रहे हैं। कृपया हमें परम्परागत औषधियों, विशेषकर जीवनीय में प्रकाशित औषधियों की अपनी आवश्यकता के बारे में सूचित करें।

रक्तमोक्षण चिकित्सा

डा. एम. महादेव शास्त्री, बंगलौर

विषाक्तता की ऐसी अवस्थाओं में जब कारण अज्ञात हो और सामान्य चिकित्सा के लिये समय न हो तो रक्त मोक्षण से अक्सर तुरन्त आराम हो जाता हैं यहां पर लेखक द्वारा रक्त मोक्षण से ठीक किये कुछ रोगियों का विवरण दिया जा रहा है।

रोगी-क, पुरुष, आयु २६ वर्ष, पित्त प्रकृति

मई महीने में जब गर्मी चरम सीमा पर थी। भिलावा (भल्लातक) के बीज निकालते समय रोगी का इसके फलों के रस से संपर्क हो गया (इसके रस से धोबी कपड़ों पर निशान लगाते हैं तथा इसके शरीर पर लग जाने से त्वचा काली होकर जलन होने लगती है)। यद्यपि रोगी को तुरन्त कोई कष्ट नहीं हुआ पर शाम तक स्पर्श के स्थान पर दर्द और कड़ापन हो गया जो तीन दिन तक जारी रहा। शाम को खुजली और सूजन बढ़ जाती थी। मरहम तेल स्नान और खाने वाली औषधियों से कोई लाभ नहीं हुआ। दसवीं रात को खुजली और सूजन बहुत बढ़ गई तथा नींद गायब हो गई।

ग्यारहवें दिन प्रातः बायें कंधे और दाहिने पैर मेंजहां सूजन थी एक–एक जोंक लगा दी गई। जोंकें आधा घंटे तक खून पीती रहीं और फिर अपने आप गिर गई। रक्त पान वाले स्थान को पानी से धोकर पट्टी बांध दी गई। शाम को खुजली, बेचैनी और दर्द कम हो गई जो फिर से बढ़ी नहीं तथा सूजन भी धीरे–धीरे ठीक हो गई।

रोगी-ख, पुरुष, आयु २२ वर्ष, बायें टखने की जोड़ में सूजन

मार्च महीने में एक सुबह रोगी को बायें टखने में अज्ञात कारण से बहुत तेज दर्द हुआ। दर्द निवारक दवाओं का केवल थोड़ी देर के लिये असर रहा। रोगी लंगड़ाने भी लगा। जांच द्वारा जोड़ में कोई अनियमितता नहीं दिखाई दी। मैंने रोगी की जांच की और सूजन वाले स्थान के पास की शिरा से १० सी.सी. रक्त निकाल दिया। शाम तक दर्द में कमी हो गई और रोगी रात में आराम से सोया। सवेरे तक दर्द लगभग ठीक हो

जलौका प्रयोग विधि

संजय रा. डाखोरे, कशेले, महाराष्ट्र

जलौका प्रयोग विधि से तात्पर्य जोंक के जरिए शरीर से दूषित रक्त निकालना है। जोंक जल में या दलदल में पाया जानेवाला जीव है जिसमें खून चूसने की सहज प्रवृत्ति होती है।

कर्जत तहसील में जोंक लगाकर खून निकालने का काम पहले नाई और कुम्हार करते थे। आज से सात साल पहले तीन वृद्ध, जिनमें दो पुरूष एवं एक स्त्री थी, इस कार्य में कुशल थे। ये समस्त चर्मरोगों का इलाज इस विधि से करते थे। स्थानीय आदिवासी जन इससे लाभ उठाते थे। आज इसका प्रयोग करने वाला कोई नहीं है।

इस विधि को पुनर्जीवित करने के लिए एकेडमी आफ डेव्हलपमेंट साइंस के आयुर्वेदिक दवाखाने में इस पर कार्य शुरू किया गया। इस दौरान विभिन्न चर्मरोगों पर जलौका विधि अपनायी गयी तथा सभी में लाभ हुआ विशेष रूप से रिसनेवाले चर्मरोगों में। सिरदर्द में भी आंख के बाहरी किनारे पर कनपटी पर जोंक लगा देने से फौरन आराम आते देखा गया।

कोई–कोई जोंक जहरीली भी होती है। जिसे लगाने से सूजन, भयंकर खुजली, जलन, मूर्च्छा आदि होती है। इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। निर्विष जोंक वेगरहित झरनों में, कमल तथा शैवाल उत्पन्न होने वाले तालाबों में पायी जाती है। यह प्रायः २ से ३ इंच लंबी होती है। इनका रंग चमकदार धुंधला लाल होता है।

जोंक का प्रयोग करने से पहले उसे हल्दी मिले हुए पानी में थोड़ी देर रखना चाहिए, इससे यह शुद्ध हो जाती है। जिस स्थान पर जोंक लगाना हो उसे साफ करके सुई से छेद करके खून की बूंद निकालनी चाहिए इससे जोंक जल्दी पकड़ लेती है। जोंक के रक्तपान आरंभ करने पर उसके मुंह के पास वाला भाग कुछ उठा हुआ मालूम देता है तथा उसके शरीर पर लहरें उठती मालूम होती हैं। तब उस पर गीला कपड़ा डाल देना चाहिए। थोड़ी देर खून चूसने के बाद वह अपने आप गिर पड़ती है। यदि अपने आप न गिरे तो उसके मुंह के पास पिसी हल्दी मलनी चाहिए। बाद में उसके शरीर पर हल्दी मलने से वह पिया हुआ खून उगल देती है। ऐसा न करने से वह मर जाती है। अतः ऐसा करना जरूरी हो जाता है। एक बार प्रयोग के बाद सात दिन के बाद ही उस जोंक का फिर से प्रयोग कर सकते हैं।

जोंक को पालने के लिए उसे एक मिट्टी के घड़े में पानी भरकर उसमें रखना चाहिए तथा घड़े का मुंह कपड़े से बांधकर रखना चाहिए। इस पानी को हर दूसरे–तीसरे दिन बदलते रहना चाहिए। इससे जोंक काफी दिनों तक जीवित रहती है। चिकित्सोपयोगी जोंक निम्न पते से प्राप्त हो सकती है :

गीता पडते (जोंक फार्म)
प्रदीप कुंज, बड़ौदा

गया और सूजन में कमी आ गई। सूजन वाले स्थान पर कैओलीन की पुल्टिस बांध दी गई। दो दिन के बाद रोगी पूरी तरह ठीक हो गया और तीन किलो मीटर चल कर पैदल अपने घर गया।

रोगी-ग-पुरुष, आयु ६५ वर्ष, दाहिने हाथ में घाव और खून के कतरे।

आधी रात को रोगी अचानक दाहिने हाथ में कुछ काटने के कारण जाग गया। उसे डर था कि कहीं यह सांप अथवा बिच्छू तो नहीं है। रोगी को बहुत तेज दर्द था। जांच करने पर मैंने पाया कि खरोंचों के साथ खून के कतरे थे। मैंने रोगी को बताया कि यह सांप या बिच्छू न होकर एक चूहा था। मैंने घाव को खुरच कर ५ सी.सी. रक्त निकाल दिया तथा बिल्वादि तेल लगाने और पीने की सलाह दी।

रोगी-घ-पुरुष, आयु ४८ वर्ष, दाहिने पैर में दुर्घटना के कारण खून जम जाना

रोगी आटोरिक्शा से गिर कर एक पत्थर से टकराया और हाथों, घुटने में खरोचें तथा पूरे शरीर में चोट लगी। डाक्टर से प्राथमिक चिकित्सा करवाई और रोगी ठीक था परन्तु पांच दिन के बाद दाहिने पैर के टखने में दर्द बढ़ गया और रोगी ठीक से चल नहीं पा रहा था। मैंने जोड़ के पास की एक छोटी शिरा से ५ सी.सी. रक्त निकाल दिया। रोगी को तुरन्त आराम हो गया।

उपरोक्त सभी रोगियों में रस रक्त दूष्य था और एक या दूसरा दोष बढ़ा हुआ था। रोगी 'क' में भल्लातक तेल उत्तेजक है तथा पित्तप्रकृति के रोगी में पित्त और कफ दोषों को बढ़ाता है। गर्मी से दोष शमन होता है, कफ गर्मी का विरोधी होने के कारण सायंकाल ही बढ़ता है (इसे कफ काल भी कहते हैं)। जोंक लगाने से मुख्य दूष्य निकल जाता है और कफ खुजली पैदा नहीं कर पाता। रोगी 'ख' में वात दोष बढ़ा हुआ था, रक्त मोक्षण के कारण सामान्य स्थिति बहाल हो जाती है। रोगी 'घ' में त्वचा में खुरचने के कारण भय उत्पन्न हो गया था। रक्त मोक्षण के कारण रोगी को संतोष हो गया।

गलगण्ड (घेंघा)

डा. विदुषी त्यागी, लखनऊ

गलगण्ड या घेंघा रोग का सीधा संबंध थायरायड ग्रंथि के बढ़ने से है। यह पिट्यूटरी ग्रंथि की अग्र पालि से स्रवित थायरायड के उत्तेजक हारमोन के अत्यधिक उत्पादन का परिणाम है।

थायरायड ग्रंथि ऊपरी श्वसनपथ से जुड़ी है मगर क्रियाशारीर की दृष्टि से बिल्कुल स्वतंत्र है। इसका नियंत्रण पिट्यूटरी ग्रंथि की अग्रपालि से स्रवित थायरायड के उत्तेजक हारमोन से होता है। इस हारमोन की कमी से थायरायड ग्रंथि की सक्रियता में कमी और अधिकता से उसकी सक्रियता की अति होती है।

थायरायड ग्रंथि के कार्यकारी सार थायराक्सीन का महत्वपूर्ण भाग आयोडीन है। थायरायड ग्रंथि अन्य सभी वाहिनीहीन ग्रंथियों से घनिष्ट रूप से संबद्ध है। स्वस्थ शरीर में यह ग्रंथि यौवनारंभ काल में, मासिक धर्म के समय, यौन उत्तेजना की स्थिति में, गर्भावस्था में, स्तन्य काल में और उल्लेखनीय रूप से गठिये के बुखार जैसे तीव्र ज्वरों में बढ़ती है।

कारण

स्थानिक गलगण्ड – यह पीने के पानी में आयोडीन की अत्यधिक कमी के कारण होता है और हिमालय के क्षेत्र में सामान्यतया पाया जाता है।

छिटपुट गलगण्ड – यह प्रायः जन्मजात बहरों को होता है। इसका कारण है आयोडीन को आत्मसात् करने की क्षमता का अभाव।

गर्भावस्था में थायरायडरोधी औषधों अथवा सब्जियों के सेवन से यह बच्चे में जन्मजात हो सकता है। हारमोन संश्लेषण में विकार होने पर आनुवंशिक गलगंड हो सकता है।

ग्रंथिल गलगण्ड – थायरायड का आयोडीनीकरण ठीक से न होने से इस प्रकार का गलगंड हो जाता है जिसमें थायरायड में घाव हो जाता है।

लक्षण विज्ञान

थायरायड ग्रंथि के विकार से दो परस्पर विरुद्ध रोग लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं :

थायरायड की अपूर्ण क्रिया

इस स्थिति में थायरायड ग्रंथि की क्रिया में कमी होती है और निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं:

वृद्धि में कमी, कलांतराल के बंद होने में विलंब, हड्डियों के परिपक्व होने में विलंब, दांत निकलने में देरी, प्रेरक विकास में देर, मानसिक विकास में देर, मानसिक विकलांगता, पेशी अतिवृद्धि अथवा पेशी विकृति, समय से पहले यौन विकास और यौन विकास में अतिविलंब।

अतिसक्रिय थायरायड

थायरायड की क्रिया में अतिरेक से निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं :

अच्छी भूख और पुष्टाहार लेने पर भी भार में कमी, धड़कन, बेचैनी, चिड़चिड़ापन, भावात्मक अस्थिरता, सक्रियता में कमी, अनिद्रा, गर्मी को सहन की क्षमता का अभाव, अत्यधिक पसीना, शीतप्रियता, पेशीगत कमजोरी, शौच क्रिया की बारंबारता और अतिसार का अक्सर होना, आंखों में अत्यधिक उभार, आंसुओं की अधिकता आंखों में किरकिराहट या दुहरी दृष्टि, त्वचा का पतलापन और कत्थई रंग का हो जाना, उसमें श्वेतकुष्ठ हो सकता है और बाल सीधे हो सकते हैं।

चिकित्सा

रोकथाम

आराम और नींद, भार की कमी की पूर्ति के लिए उच्च कैलोरीदार आहार, एक वयस्क व्यक्ति को १००–१५० माइक्रोग्राम आयोडीन की जरूरत होती है, उसकी पूर्ति।

चिकित्सा में निम्न औषधियों का प्रयोग किया जाता है :

कट्फलादि क्वाथ, श्वेत अपराजिता की जड़ का चूर्ण, घी के साथ, बृहत् कट्फलादि क्वाथ, भारंगीमूल प्रलेप, सर्षपादि प्रलेप, कमलनाल प्रलेप, दशमूल चूर्ण का पानी का साथ लेप करना।

विटामिनों का महत्व

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि यद्यपि विटामिन शरीर में ऊर्जा उत्पन्न नहीं करते तथापि वे आहार के प्रमुख घटक हैं और उनके आहार में अनुपस्थित रहने अथवा उनके आवश्यकता से कम रहने पर मनुष्य का शरीर स्वस्थ्य नहीं रहता। विटामिन की आहार में कमी से शरीर की समुचित वृद्धि एवं रक्षा नहीं हो पाती और शरीर अनेक न्यूनता जन्य व्याधियों से ग्रसित हो जाता है। इसी कारण विटामिनों का विस्तृत ज्ञान शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक है।

वर्गीकरण – विटामिन दो वर्ग में रखे जाते हैं :

१. वसा में घुलनशील – इनमें विटामिन ए,डी,ई एवं के प्रमुख हैं

२. जल में घुलनशील – इनमें विटामिन सी,बी काप्लेक्स एवं पी प्रमुख हैं।

विटामिन ए – इस विटामिन को रेटीनाल अथवा एन्टीजीरोप्थेलमिक फैक्टर भी कहते हैं। हापकिन ने १९४५ में अपने अनुसंधान में पाया कि चूहों को दूध देने से उनकी वृद्धि स्वाभाविक रही परंतु दूध को हटाकर अन्य आहार देने पर उनकी वृद्धि में विकृति पायी गई। मैकमोहन एवं डेविस ने १९१५ में दूध में पाये जाने वाले इस वृद्धिकारक तत्व की उपस्थिति अंडा एवं मक्खन में भी देखी और उन्होंने इस तत्व को विटामिन ए कहा। यह विटामिन ए१ तथा ए२ रूप में पाया जाता हैं। केरोटीन से इसका निर्माण होने से इसे केरोटीन प्रोविटामिन ए भी कहा जाता है।

प्राप्ति एवं शोषण – प्राणियों में यह विटामिन वसा में होता है अतः दुग्ध, क्रीम, मक्खन में तथा यकृत तैल, काडलिवर तैल, हेलीवटलिवर तैल, अंडा, मछली में बहुतायत से होता है। वानस्पतिज तैलों में यह नहीं के बराबर रहता है। वनस्पति द्रव्यों में यह पूर्ववर्ती केरोटीन के रूप में पाया जाता है। इनमें गाजर, शलजम, पालक, मटर, पत्तागोभी, सलाद, धनिया आदि पत्तेदार सब्जी; टमाटर, सेभ, आलू, कद्दू आदि तरकरियों में; केला, आम, आड़ू, खूबानी, पपीता, खरबूजा आदि फलप्रमुख हैं। इन द्रव्यों में पाया जाने वाला केरोटीन आन्त्र में वसा एवं आन्त्र रस की सहायता से शोषित होकर यकृत में विटामिन ए के रूप में नियमित होता है। हरी घास खाने वाली गाय के दूध एवं समुद्री मछलियों के यकृत में यह अधिक रहता है।

विटामिन ए आहार के पचन के उपरांत क्षुद्रान्त्र में वसाम्ल एवं विटामिन के रूप में प्रथक हो जाते हैं। विटामिन तथा केरोटीन लसिका वाहिनियों से शोषित होकर रक्त में ईस्टर के रूप में परिभ्रमण करते हैं। इस कार्य में वसा एवं बाइल सहायक होता है। यकृत में पहुंचकर एक केरोटीन से दो अणु विटामिन ए बनता है। यह परिवर्तन प्राणियों में आन्त्र की कला भी कुछ मात्रा में करती है परंतु मनुष्यों में केवल यकृत में होता है। यकृत में मुख्य रूप से यह ईस्टर के रूप में संचित रहता है। यह यकृत में लाइपोप्रभुजिन के साथ रहता है। अल्पमात्रा में यह विटामिन फुफ्फुस, स्तन ग्रन्थि, वृक्क एवं त्वचा में भी संचित रहता है। यह विटामिन वसा में विलेय एवं जल में अविलेय है। यह विटामिन ताप को सहन कर सकता है। परंतु अल्ट्रावायलेट किरणों एवं वायु से विरंजित होकर नष्ट हो जाता है। यह विटामिन अधिक ताप में नष्ट हो जाता है परंतु आइसक्रीम में नष्ट नहीं होता।

विटामिन ए के कार्य

- यह विटामिन शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक है।
- यह विटामिन ग्रन्थियों एवं इपीथीलियल ऊतकों के कार्यो का अनुरक्षण करता है जिससे नाक, कंठ, नेत्र एवं श्वसन संस्थान की कला कार्यक्षम एवं स्वस्थ रहती है।

डा. प्रमोद मालवीय

- यह शरीर में जीवाणुओं के उपसर्ग को रोकता है।
- प्रोटीन के संश्लेषण में भाग लेता है।
- अस्थिकोषों की क्रिया का अनुरक्षण करता है जिससे अस्थि की वृद्धि एवं उसका आकार अनुरक्षित रहता है।
- यह विटामिन म्यूकोपालीसर्कराइड के निर्माण में सहायक है।
- यह कोषभित्ति एवं अनुकोष कणों के अनुरक्षण की क्रिया में सहायक है।
- इसके द्वारा लाइजोजाइम एवं माइटोकोन्ड्रिया की प्रवेश्यता का अनुरक्षण रहता है।
- इसके द्वारा कार्बोज धातुपाक में सहायता मिलती है।
- यह स्वस्थ प्रजनन क्रिया में भी सहायक है।
- यह मूत्रगत पथरी के निर्माण को रोकता है।

विटामिन ए की कमी से उत्पन्न विकृतियां

- इस विटामिन की कमी शरीर की वृद्धि को अवरूद्ध करती हैं।

शेष पृष्ठ ३६ पर

सांस की बीमारियाँ

डा. राजेन्द्र प्रसाद, सहायक प्रोफेसर
क्षय एवं वक्ष रोग विभाग, के.जी. मेडिकल कालेज, लखनऊ

हमारे देश में सांस की बीमारी आम है। चिकित्सा व्यवसाय में प्रायः नित्य आने वाले श्वास रोगों में फेफड़ों का तपेदिक, तमक श्वास, श्वसनी शोथ, निमोनिया और फेफड़े का कैंसर प्रमुख हैं। फेफड़ों का तपेदिक भारत में आम है। इस समय देश में इसके १ करोड़ ४० लाख मरीज हैं। इनमें से ३५ लाख संक्रामक क्षय से पीडित हैं और समाज में बीमारी को फैला रहे हैं। यह एक दुखंद विरोधाभास है कि निदान और उपचार के अचूक उपायों के रहते भी प्रतिवर्ष ५ लाख लोग क्षयरोग से मरते हैं।

क्षय के अतिरिक्त तमक श्वास दूसरा ऐसा रोग है जोकि भारतीय समाज में आम तौर पर पाया जाता है। यह एक चिरस्थायी रोग है अतः इसके विषय में गलतफहमियां और उपचार संबंधी भ्रांत धारणाएं भी बहुत हैं। अतः इस रोग के बारे में सही जानकारी का प्रचार करना अनिवार्य है।

फेफड़े का कैंसर भी एक श्वास रोग है। चालीस वर्ष पहले यह रोग बिरले ही होता था। आज पाश्चात्य देशों में यह कैंसर का सबसे घातक रूप हो गया है। १० प्रतिशत फेफड़ों का कैंसर धूम्रपान से होता है। यदि धूम्रपान को रोका न गया तो निकट भविष्य में फेफड़ों का कैंसर बढ़ कर महामारी का रूप ले सकता है।

अगले अंक के आकर्षण

आहार एवं पोषण विशेषांक

- आहार एवं पोषण के आयुर्वेदिक सिद्धान्त
- आधुनिक मतानुसार आहार मान की गणना
- कुपोषण क्या है?
- क्या भारतीय भोजन सम्पूर्ण पोषण देते हैं?
- घी, दूध और दही सेवन - विभिन्न मत
- शाकाहार या मांसाहार ?
- खाद्य पदार्थों में मिलावट
- मोटापे से कैसे बचें ?
- आहार के बारे में गांधीजी के विचार
- गोदाम भरे हैं पर जनता भूखी है ?

श्वसन तन्त्र की रचना

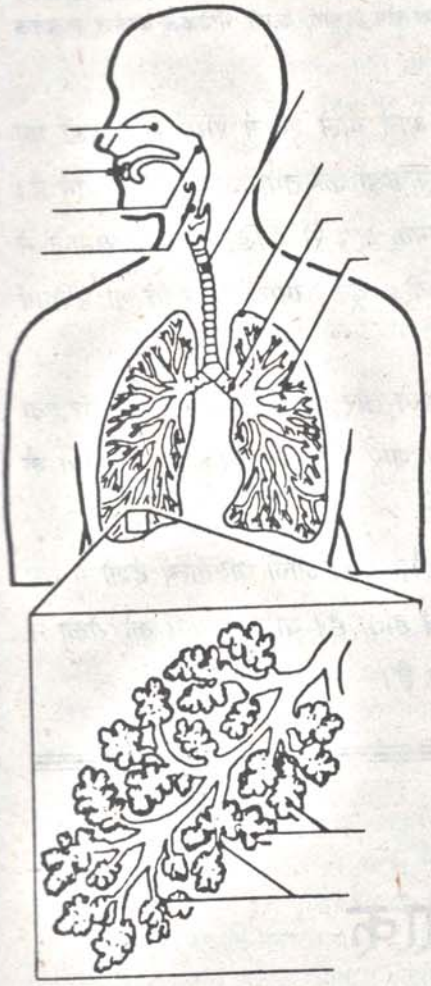

श्वसन क्रिया काम में आने वाले अंगों को श्वसनतन्त्र के अन्तर्गत जाना जाता है। श्वसन क्रिया के द्वारा प्राणियों में वातावरण से हवा फुफ्फुसों में ले जाई जाती हैं जहां फुफ्फुसों की रक्त केशिकाएं उसमें से आक्सीजन शोषित कर रक्त परिभ्रमण द्वारा ऊतकों को भेजती है। ऊतकों में आक्सीजन के द्वारा भोज्य द्रव्यों का धातुपाक किया जाता है जिससे प्राणियों को विभिन्न कार्य संपादनार्थ आवश्यक ऊर्जा प्राप्त होती है और शरीर का ताप स्थिर रखा जाता है। धातु पाक क्रिया में खाद्य द्रव्यों के ज्वलन से ऊर्जा के साथ कार्बनडाइ आक्साइड गैस त्याज्य पदार्थ के रूप में उत्पन्न होती है जो रक्तपरिभ्रमण द्वारा फुफ्फुसों में आकर श्वसन क्रिया द्वारा शरीर से बाहर वातावरण में छोड़ दी जाती है। आयुर्वेद में हवा में स्थित वायु को अवर पीयूष अथवा विष्णु पदामृत कहा है जिससे प्राणियों का जीवन एवं शरीर व्यापार निष्पन्न होते हैं।

श्वसन क्रिया में दो व्यापार होते हैं प्रथम श्वास जिसके द्वारा आक्सीजन फुफ्फुसों में आती है एवं द्वितीय निश्वास जिसके द्वारा फुफ्फुस में स्थित कार्बन डाइ आक्साइड शरीर से बाहर वातावरण में प्रक्षेपित की जाती है। श्वास सक्रिय क्रिया है जब कि निश्वास निष्क्रिय क्रिया है। एक युवा पुरूष प्रतिमिनट ६–७ लीटर वायु श्वसन द्वारा ग्रहण करता है। प्रति श्वास अथवा निश्वास में जाने आने वाली वायु की मात्रा लगभग ५०० मिली होती है जो टाइडल वायु कहलाती है। आराम की स्थिति में युवा मनुष्य प्रति मिनट २५० मि.ली. आक्सीजन ग्रहण करता है और २०० मि.ली. कार्बनडाइ आक्साइड शरीर से बाहर निकालता है।

वाह्य श्वसन एवं अन्तः श्वसन

श्वसन एक दोहरी प्रक्रिया है जिससे फुफ्फस एवं ऊतकों में वायु का विनिमय होता है। वाह्य श्वसन में वायु वातावरण से फुफ्फुसों में पहुंचकर उसके सूक्ष्म – वायुकोषों में भर जाती है। वायुकोषों की दीवाल रक्त केशिकाओं से मिली रहती है। दोनों में दबाव का अन्तर पाया जाता है जिससे आक्सीजन वायुकोषों से रक्त केशिकाओं में चला जाता है। साथ ही रक्त केशिकाओं में स्थित कार्बनडाइ आक्साइड वायुकोषों में आ जाती है। जहां से वह निश्वास क्रिया में बाहर निकाल दी जाती है। यह वाह्य श्वसन है।

वैद्य पूर्णचन्द्र जैन, लखनऊ

अन्तः श्वसन में इसी प्रकार ऊतकों में वायु का विनिमय होता है। रक्त केशिकाओं के लालकणों में स्थित आक्सीजन केशिकाओं से कम दाब के ऊतकों में जाता है और ऊतकों में निर्मित कार्बनडाइ आक्साइड ऊतकों से रक्त केशिकाओं में जाता है जहां से रक्त परिभ्रमण द्वारा उसे फुफ्फुसों में भेजा जाता है।

श्वसन के अंग

श्वसन का प्रमुख अंग फुफ्फुस हैं। जहां वातावरण से प्राप्त वायु का विनिमय होता है। वातावरण से वायु नासागुहा नासाग्रसनी स्वर यन्त्र श्वासपथ एवं श्वसनी के मार्ग से वायुकोषों में जाती है और वहां से शोषित होकर फुफ्फुसकी रक्त केशिकाओं में पहुंचती है। हृदय के माध्यम से संपूर्ण शरीर को आक्सीजन मिश्रित रक्त की आपूर्ति होती है।

फुफ्फुस संख्या में २ होते हैं और हृदय के दोनों ओर वक्ष में स्थित रहते हैं। दाहिना फुफ्फुस तीन खंड़ों में तथा बांया फुफ्फुस दो खण्डों में विभाजित रहता है। फुफ्फुस चारों ओर से दो स्तरों के आवरण से ढंके रहते हैं जिन्हें प्लूरा कहते हैं। फुफ्फुस की रचना मधुमक्खी के छत्ते के समान होती है। इसका निर्माण असंख्य कोषों से होता है। जिन्हें वायुकोष कहते हैं। वायुकोष भी अंगूर के

गुच्छे के समान अनेक कोषों में विभाजित होते हैं इससे श्वसन का क्षेत्र बढ़ जाता है।

श्वास पथ एवं श्वसनी

स्वरयंत्र से नीचे श्वास पथ प्रारंभ होता है। जो ६२ से.मी. लंबा एवं २.५ से.मी. चौड़ा होता है। इसका निर्माण अपूर्ण मुद्रिकाओं से होता है। श्वासपथ की कला रोमश होती है और उसकी गति स्वरयंत्र की ओर होती है। इससे वायु में स्थित अशुद्धियां आगे नहीं जा पाती हैं। श्वास पथ वक्ष में चतुर्थ एवं पंचम वक्ष कशेरूक के पास दो भागों में विभाजित हो जाता है। दक्षिण शाखा दाहिने फुफ्फुस को और वाम शाखा बायें फुफ्फुस को जाती है।

फुफ्फुस में पहुंचने पर शाखाएं अनेक छोटी शाखाओं में विभाजित होती हैं जिन्हें ब्रान्काई कहते हैं। फुफ्फुस में प्रवेश कर ब्रान्काई की शाखा प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक शाखाओं में अनेकशः विभाजित होकर सूक्ष्म व्यास की ब्रान्कियोल्स में परिवर्तित होती हैं। प्रत्येक ब्रान्कियोल्स का फूला भाग वेस्टीवुल कहलाता है जिससे अनेक एट्रिया निकलते है। प्रत्येक एट्रिया दो या तीन इन्फन्डीवुल में खुलते हैं और प्रत्येक इन्फन्डीवुल असंख्य वायुकोषों में बदल जाते है जो श्वसनीका अन्त होता है। वायुकोष फूले फूले अंगूर के गुच्छे के समान होने से फुफ्फुस का आन्तरिक क्षेत्रफल अत्यधिक बढ़ा देते है। जिससे वायु का विनिमय अच्छी तरह से हो सके। श्वासपथ से प्रारंभ कर वायुकोष तक की रचना श्वसनवृक्ष कहलाती है। वायुकोषों की दीवाल पतली और चपटे कोषों के मृदु स्तर से बनती है जिसके चारों ओर रक्त केशिकाएं उसे घेरे रहती हैं। ये केशिकाएं फुफ्फसीय धमनी की शखाएं होती हैं और हृदय से अशुद्ध रक्त को फुफ्फुस में लाती हैं। रक्त केशिकाओं की दीवाल भी पतली होती है जिससे इनमें स्थित कार्बन डाइआक्साइड वायु आसानी से दाब की विभिन्नता के कारण वायु कोषों में पहुंच जाती है तथा वायु कोषों में स्थित आक्सीजन फुफ्फुसीय शिरा की केशिकाओं में चला जाता है जो वायुकोषों को आवृत किये रहती है। इस प्रकार विसरण विधि से दाब की विभिन्नता के कारण फुफ्फुस के वायुकोषों एवं धमनी तथा शिरा की केशिकाओं में वायु का विनिमय होता है। इसे ही रक्त की शुद्धि कहते है। शुद्ध आक्सीजन युक्त रक्त फुफ्फुसीय शिराओं द्वारा हृदय को जाता है जहां से रक्त परिभ्रमण द्वारा उसे सारे शरीर में भेजा जाता है।

वायु का मार्ग

वातावरण से वायु नासा गुहा द्वारा भीतर प्रवेश करती है तथा पश्च नासा द्वार से आगे उसे नासाग्रसनी में ढकेल दिया जाता है। नासा गुहा में सूक्ष्म घने बाल होते हैं जिनमें वायु के साथ आये धूलकण, रेशे, जीवाणु एवं अन्य अशुद्धियां भीतर वायु के साथ प्रवेश नहीं कर पाती हैं। नासागुहा की कला चिकनी होती है जिससे बचे हुए धूल कण, जीवाणु एवं अन्य विजातीय द्रव्य चिकनी कला में चिपक जाते है और आगे जाने वाली वायु छन कर ही श्वास पथ को जाती है। नासागुहा की अस्थियों की रचना इस प्रकार रहती है जिससे नासागुहा की कला का क्षेत्र बढ़ जाता है और वहां पहुंचने वाली वायु विस्तृत क्षेत्र को पार करते समय आवश्यकतानुसार शीतल अथवा उष्ण हो जाती है साथ ही वहां स्थित वाष्प से नम हो जाती है। नासागुहा के ऊर्ध्वप्रान्त में घ्राणेन्द्रिय के अंग स्थित होते हैं जिससे वायु की सुगंध अथवा दुर्गन्ध का ज्ञान होता है।

नासाग्रसनी नासिका के पीछे का भाग है। जिसके सामने स्वरयंत्र और पश्च दीवाल पर टान्सिल पाये जाते है। इसकी श्लेष्मल कला के द्वारा भी नासागुहा से आयी वायु अधिक नम की जाती है। श्वासपथ के ऊर्ध्व भाग को स्वरयंत्र कहते हैं इसमें स्थित तंत्रियां वायु के आने जाने के कारण स्वर उत्पन्न करती हैं। नासा ग्रसनी से वायु स्वरयंत्र के माध्यम से श्वासपथ में जाती है और वहा से ब्रान्काइ एवं ब्राक्योल के माध्यम से फुफ्फुसों के वायुकोषों में प्रवेश करती है जहां वायु का विनिमय होकर आक्सीजन ऊतकों को और कार्बन डाइ आक्साइड ऊतकों से वायु कोषों को जाती है। यही प्रक्रिया श्वसन कहलाती है जिससे प्राणी का जीवन चलता है।

फुफ्फुसों की रक्त आपूर्ति एवं पोषण

फुफ्फुसीय धमनी कार्बनडाइ आक्साइडयुक्त रक्त हृदय के दांये वेन्ट्रिकल से फुफ्फुसों को ले जाती हैं। ये धमनी फुफ्फुस में शाखा प्रशाखाओं में विभक्त होकर अन्त में केशिकाओं का जाल बनाकर वायुकोषों को चारों ओर से आवृत कर लेती हैं। इन रक्त केशिकाओं और वायुकोषों की पतली सूक्ष्मभित्तियों में गैसों का आदान प्रदान होता है। कार्बन डाइ आक्साइड गैस फुफ्फुसीय धमनी की रक्त केशिकाओं से वायुकोषों में चला जाता है और वायुकोषों में स्थित आक्सीजन रक्त केशिकाओं में आ जाता है। गैसों के पारस्परिक विनिमय की क्रिया केशिका और वायुकोषों में दाब की विभिन्नता के कारण होती हैं। इसे गैसों का विसरण कहते हैं। इसी को रक्त की शुद्धि कहते हैं। शुद्ध होने के उपरांत आक्सीजन युक्त शुद्ध रक्त केशिकाओं से मिली हुई शिरिकाओं में आ जाता है जो परस्पर मिल कर दो फुफ्फुसीय शिरा निर्मित करती हैं। फुफ्फुसीय शिराओं से शुद्ध रक्त हृदय के वाम वेन्ट्रिकल में पहुंचता है जहां से हृदय की संकुचन क्रिया से संपूर्ण शरीर में भेजा जाता है।

महाधमनी की शाखा ब्रान्कियल धमनी शुद्ध रक्त को फुफ्फुसों में ले जाती है। शाखा प्रशाखाओं में विभक्त होकर यह धमनी भी केशिकाओं का जाल बनाती है जो फुफ्फसी धमनी की केशिकाओं से अलग होती है। ब्रान्कियल धमनी की केशिकाओं द्वारा फुफ्फुसों को पोषक सामग्री एवं आक्सीजन प्रदान किया जाता है और वहां उत्पन्न त्याज्य पदार्थ ब्रान्कियल शिरा की शाखाओं से एकत्रित कर आयुग्य शिरा के रूप में अधोमहाशिरा में मिल जाते हैं।

हम सांस क्यों और कैसे लेते हैं ?

डा. प्रमोद मालवीय, लखनऊ

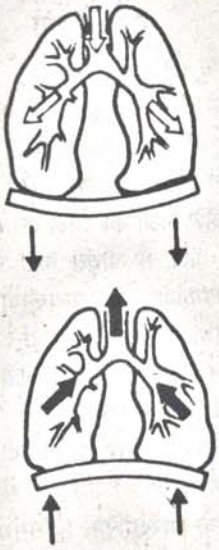

सांस लेना प्राणी की आवश्यक क्रियाओं में है विभिन्न प्राणियों में प्रकृति ने विभिन्न साधन श्वसन के लिये बनाये हैं। उच्चवर्ग के प्राणियों में श्वसन क्रिया के लिये फुफ्फुस होते हैं। मनुष्य में उनकी संख्या दो है और वे वक्षगुहा में ह्रदय के दोनों ओर स्थित रहते हैं। ये रन्ध्रयुक्त, हलके एवं स्पन्जी होते हैं। जन्म के पूर्व बालक के दोनों फुफ्फुस सिकुड़े हुए तथा वजनदार होते हैं परंतु जन्म के उपरांत सांस लेते ही वे फूल जाते है।

श्वसन क्रिया

स्वस्थ श्वसन में दो क्रियाएं होती हैं उच्छास एवं निश्वास। दोनों को मिलाकर श्वसन कहा जाता हैं एक युवा मनुष्य एक मिनिट में १२–१४ बार सांस लेता हैं और छः एक बार के श्वसन में उच्छास एवं निश्वास को मिलाकर ५०० मिली वायु का आवागमन होता है। बालकों में श्वसन दर एक मिनिट में ३३ तक होती है और उनका वातायन ५०० मिली प्रति मिनट है जबकि प्रति उच्छवास एवं निश्वास में वायु में मात्रा १५ मिली होती है।

उच्छवास एक सक्रिय क्रिया है जिसमें वक्षगुहा विस्तृत हो जाती है। और वायु नासिका, ग्रसनी, स्वरयंत्र एवं श्वासनली के रास्ते फुफ्फुस में आती हैं इस कार्य को करने वाली प्रमुख मांस पेशी डायफ्राम है जो वक्ष को उदर से विभाजित करती है। इस पेशी का नियंत्रण फ्रेनिक तंत्रिका से होता है। निश्वास एक निष्क्रिय क्रिया है जिसमें वक्षगुहा अपनी पूर्ववस्था में आ जाती है। वक्षगुहा के संकरा होने से फुफ्फुसों की वायु श्वास नली, स्वर यंत्र, ग्रसनी एवं नासिका के माध्यम से बाहर निकाल दी जाती है। यही दोनों क्रियाएं श्वसन कहलाती हैं और निरंतर चलती रहती हैं।

वक्षगुहा में फुफ्फुस दो स्तर के आवरण से ढके रहते हैं जिसे प्लूरा कहते है। ये दोनों स्तर एक चिकने द्रव के द्वारा नम रहते है। उच्छ्वास के समय वक्ष गुहा के अन्तराल में वृद्धि होने से प्लूरा के दोनों स्तरों के मध्य का दाब वातावरण में वायु के दाब से कम हो जाता है। इसी प्रकार वक्षान्तराल दाब भी अन्तः प्लूरल दाब के समान कम हो जाता है। इन दोनों दाबों के कम होने का परिणाम उच्छ्वास के समय एल्मलट दाब के कम होने पर होता है। जिससे वातावरण दाब जो शून्य के आसपास रहता है से वायु ऋणात्मक कम दाबयुक्त फुफ्फुसों में प्रविष्ट कर जाती है।

निश्वास निष्क्रिय क्रिया है। इस अवस्था में मध्यच्छद पेशी के शिथिल होने से वह ऊपर को उठकर पूर्ववत् आ जाती है। इस प्रकार वक्ष गुहा का आयाम कम होने से वक्षान्तराल दाब में वृद्धि होती है जो एल्मलट दाब में वृद्धि करके उसे वातावरण दाब से बढ़ा देता है। इस कारण फुफ्फुसीय वायु श्वसन मार्ग से नासिका द्वारा बाहर कर दी जाती है।

श्वसन का कारण

श्वसन में मुख्य कारण फुफ्फुसीय वायु एवं वातावरण वायु के दाब का अन्तर है। भौतिकी के अनुसार वायु उच्च दाब से निम्न दाब की ओर गति करती है। उच्छ्वास के समय वातावरण दाब की अपेक्षा एल्मलट दाब कम रहता है जिससे वातावरण से वायु फुफ्फुसों में प्रवेश करती हैं निश्वास के समय विरूद्ध प्रक्रिया रहती है। फुफ्फुसीय दाब की अपेक्षा वातावरण दाब कम रहता है अतः फुफ्फुसीय वायु वातावरण में आ जाती है। मानव एवं उच्च प्राणियों में मांसपेशियों के संकुचन से श्वसन नियमित रहता है। उच्छ्वास एवं निश्वास से निकलने वाली वायु एवं एल्यलाई में रहने वाली वायु का संगठन निम्न प्रकार है।

श्वसन की मांसपेशियां

मध्यच्छद (डायफ्राम)

श्वसन की यह प्रमुख पेशी है। यह गुंबद के आकार की पेशी है जिसकी उत्तलता वक्ष की ओर तथा अवतल सतह उदर की

अच्छ्वासित वायु	निश्वसित वायु	एल्मलटवायु	
आक्सीजन	२०.६४ प्रतिशत	१६.४ प्रतिशत	१४.२ प्रतिशत
कार्बन डाइ आक्साइड	०.०४ प्रतिशत	४.०० प्रतिशत	५.५ प्रतिशत
नाइट्रोजन	७६.०२ प्रतिशत	७६.६ प्रतिशत	८०.०३ प्रतिशत

ओर होती है। यह वक्ष गुहा को उदर गुहा से प्रथक करती है। इसके संकुचन से उत्तल सतह नीचे को झुक जाती है। जिससे उच्छवास के समय वक्षगुहा के अनुदैर्ध्य व्यास में वृद्धि हो कर एल्मलट दाब में कमी एवं उदरान्तराल दाब में वृद्धि होकर उदरभित्ति बाहर और भीतर की ओर गति करती है फ्रिनिक तंत्रिका इसे नियंत्रित करती है।

पर्शुका मांसपेशी

इनके संकुचन से उच्छ्वास के समय पर्शुका के अग्रभाग के उन्नत होने से वक्षगुहा का अनुप्रस्थ व्यास बढ़ जाता है। इस समय वक्षोस्थि एवं प्रथम पर्शुका आगे को हो जाती है। वक्षोस्थि के आगे ऊपर की ओर जाने से वक्ष के ऊर्ध्वप्रान्त का अनुप्रस्थ व्यास बढ़ जाता है। द्वितीय से पंचम पर्शुका घूमकर क्षैतिज स्थिति में आ जाती है ओर वक्ष के अनुप्रस्थ व्यास में और वृद्धि करती है। छठी से दशवीं पर्शुका तिर्यक गति कर वक्ष के तिर्यक व्यास में वृद्धि करती है। ग्यारहवीं एवं बारहवीं पर्शुका उदर पेशियों के साथ गति करती है। इन पेशियों का नियंत्रण प्रथम से ग्यारह वक्ष क्रशेरूकों से निकलने वाली तत्रिकाओं से होता है।

सहायक मांसपेशियां

तीव्र उच्छवास में कटरनोयास्टाइड एवं स्क्लेनी पेशियों का तीव्र संकुचन वक्ष गुहा के अन्तराल को और भी बढ़ा देता है। व्यायाम अथवा अत्याधिक कार्यावस्था में जब संवातन अधिक हो जाता है तब गर्दन के पीछे की मांसपेशियां तथा पृष्ठ की मांसपेशियां भी वक्ष गुहा के अन्तराल बढ़ाने में सहायक होती हैं। कुछ अन्य मांस पेशियां जिनमें नासा, गला एवं स्वरयंत्र की पेशियां हैं, नासा से आने वाली वायु के अवरोध को दूर करती हैं।

सामान्य निश्वास

यह निष्क्रिय क्रिया है जिसमें उच्छ्वास पेशियों के स्वाभाविक दशा में आने पर वक्षगुहा के दाब में वृद्धि होकर वायु निश्वास अवस्था में नासिका से बाहर की जाती है परंतु तीव्र निश्वास में उदर मांस पेशियां एवं आन्तरिक पर्शुका पेशियां भी कार्य करती हैं। इनके कार्य से उदरगुहा के दाब में वृद्धि होकर मध्यच्छद पेशी और भी ऊपर उठ जाती है।

उच्छवास दाब में विभिन्नता श्वसन में उच्छ्वास के प्रारंभ में एल्मलट दाब ऋणात्मक २.५ मि.मी. मरकरी रहता है। इससे फेफड़े कम मात्रा में फूले रहते हैं। उच्छ्वास में वक्षगुहा, इन्टरप्लूरल, एवं एल्मलट दाब में ऋणात्मक वृद्धि होकर–६ मि.मी. मरकरी हो जाता है। ऋणात्मक दाब के समय फुफ्फुस पर्णतया फूले नहीं रहते इस कारण नासिका के रास्ते में वायु को किसी प्रकार का अवरोध नहीं होता। आराम के समय एल्मलट दाब शून्य मि.मी मरकरी रहता है जो वातावरण दाब के बराबर होने से वायु न तो नासिका से प्रवेश करती है और न ही बाहर फेंकी जाती है। उच्छ्वास के समय वायु के प्रवेश से फुफ्फुस फूल जाते है, दाब कम रहता है जो –२ से –६ मरकरी रहता है और वायु के फुफ्फुसों में प्रवेश की रूकावट नहीं होती। तीव्र उच्छ्वास में एल्मलट दाब अत्यधिक कम होकर –४० से –५० मि.मी. मरकरी हो जाता है।

निश्वास के समय एल्मलट दाब वातावरण दाब से अधिक धनात्मक ३ से ४ मि.मी. मरकरी रहता है। तीव्र निश्वास में, पेशी व्यायाम में, पुरीष एवं मूत्र के उत्सर्जन में, श्वास लेने तथा छींकने में एल्मलट दाब में अत्यधिक वृद्धि होकर धनात्मक ४० मि.मी. मरकरी हो जाता है परंतु वक्षगत एवं इन्ट्रा प्लूरल दाब में विशेष वृद्धि नहीं होती।

श्वसन का प्रयोजन

प्रत्येक प्राणी को धातुपाक क्रिया के लिये आक्सीजन की आवश्यकता होती है। धातुपाक क्रिया से आहार द्रव्य विघटित होकर कुछ उपयोगी द्रव्यों ऊर्जा और कुछ अनुपयोगी द्रव्यों कार्बनडाइ आक्साइड आदि में परिवर्तित होते हैं। आहार द्रव्यों से प्राप्त ऊर्जा से प्राणी विभिन्न कार्य संपादित करता है जिससे शरीर की वृद्धि होती है। धातु पाक से उत्पन्न कार्बन डाइआक्साइड ऊतकों के माध्यम से शिरिकाओं में आती है। शिरिकाएं शिरा निर्मित करती हैं और अंत में उर्ध्वमहाशिरा एवं अधो महाशिरा द्वारा यह रक्त हृदय के दक्षिण अरिकल में आता है। दक्षिण आरिकल से रक्त दक्षिण वेन्ट्रीकल में और वहां से फुफ्फुसीय धमनी द्वारा शुद्ध होने को फुफ्फुसों में जाता है। फुफ्फुसों में वायुकाषों के चारों ओर फुफ्फुसीस धमनी एवं फुफ्फुसीय शिरा की केशिकाओं का जाल रहता है। इनमें वायुकोषों का आक्सीजन फुफ्फुसीस शिराओं में तथा फुफ्फुसीय धमनी की केशिकाओं से कार्बन डाइ आक्साइड वायुकोषों में चली जाती है। वायु का यह पारस्परिक विनिमय वायुकोष, रक्त केशिकाओं एवं शिराओं में दाब की विभिन्नता के कारण होता है। फुफ्फुसीय शिराओं से शुद्ध रक्त हृदय के बायें आरिकिल में और वहां से बायें केन्द्रीकल में और उसके संकोच से सारे शरीर के ऊतकों को धमनियों के द्वारा जाता है। ऊतकों को जाने वाले १०० मि.ली. इस शुद्ध रक्त में ३ मि.ली. आक्सीजन घोल रूप में तथा १६ मि.ली. आक्सीजन हीमोग्लोबिन के यौगिक के रूप में रहती है। धमनियों में आक्सीजन का दाब १०० मि.मी. मरकरी रहता है जबकि शिरागत रक्त में आक्सीजन का दाब ३५ मि.मी पारद है और ऊतकों में इससे भी कम है अतः आक्सीजन शिराओं से ऊतकों में धातु पाक क्रिया के लिये आसानी से चला जाता है।

ऊतकों में धातुपाक के उपरांत कार्बन डाइआक्साइड शिरिकाओं में भी दाब की विभिन्नता के कारण आ जाती है धमनीगत रक्त में कार्बन डाइ आक्साइड ४८ वाल्यूम रहती है और दाब ४० मि.ली. मरकरी होता है जब कि शिरागत रक्त में ५२ वाल्यूम एवं दाब ४६ मि.ली. पारद होता है। ऊतकों में इससे अधिक मात्रा होती है जिससे कार्बन डाइ आक्साइड ऊतकों से शिराओं में आ जाती है जो रक्त परिभ्रमण द्वारा शुद्धि के लिए हृदय को वापिस भेजा जाता है। इस प्रकार श्वसन से प्राप्त आक्सीजन का उपयोग ऊतकों में किया जाता है।

धूम्रपान और श्वास रोग

डा. राजेन्द्र प्रसाद, लखनऊ

धूम्रपान के अभ्यासी व्यक्ति को श्वास रोग आसानी से दबोच लेते हैं। आज स्त्रियों में धूम्रपान के फैशन के प्रचलन से व निष्क्रिय धूम्रपान की वृद्धि से समाज में श्वास रोगों की वृद्धि हो रही है। फेफड़ों, मुख गुहा, किडनी, ग्रासनली और मूत्राशय का कैंसर धूम्रपान से हो सकता है। इससे श्वसनी शोथ, वातस्फीति (ऐंफिसीमा) और पेप्टिक अल्सर के अतिरिक्त हृदय रोग भी हो सकते हैं।

तंबाकू में ३८०० से अधिक घटक हैं और वे सबके सब धूम्रपान करने वाले को हानि पहुंचा सकते हैं। अनुमान है कि भारत में ५० प्रतिशत वयस्क पुरुष और ५ प्रतिशत स्त्रियां किसी न किसी रूप में धूम्रपान करती हैं।

क्षोभक होने से धुआं पहले श्वसनी शोथ उत्पन्न करता है। जो लंबे समय तक चलता है और समय बीतने के साथ वातस्फीति उत्पन्न करता है। दीर्घकालिक श्वसनी शोथ की उत्पत्ति अनेक कारकों पर निर्भर करती है जैसे धूम्रपान की अवधि, मात्रा और विधि, कम उम्र में धूम्रपान करने वाले और देर तक धूम्रपान करनेवाले श्वसनी शोथ से शीघ्र पीडित हो सकते हैं। धूम्रपान करने वालों के भाई–बहनों को भी इस रोग से पीडित होते देखा जा सकता है।

बरसों से धूम्रपान करते आ रहे व्यक्ति प्रायः ४० वर्ष की उम्र में दीर्घकालिक श्वसनी शोथ के शिकार हो जाते हैं। लगातार दो वर्ष तीन–तीन महीने नित्य बलगमी खांसी इस रोग की उत्पत्ति का परिचायक है। बाद में सांस उखड़ने लगती है। जो सर्दियों में ज्यादा कष्टकारक हो उठती है। जब रोग और बढ़ जाता है तो सांस वर्ष भर उखड़ी रहती है। इन लक्षणों के होने पर रोगी को सावधान हो जाना चाहिए। ऐसे लोगों को धूम्रपान त्याग कर किसी वक्ष विशेषज्ञ का परामर्श लेना चाहिए।

सांस उखड़ने की शिकायत के शुरू होने से पहले ही धूम्रपान का त्याग करने से कुछ–न–कुछ लाभ अवश्य होता है। हालांकि फेफड़ों की जितनी क्षति हो चुकी होती है उससे उबरना संभव नहीं रहता, लेकिन धूम्रपान बंद कर देने से फेफड़े और नहीं खराब होते।

फेफड़े का कैंसर अत्यंत दुस्साध्य व्याधियों में से एक है। बीड़ी–सिगरेट पीना इसका प्रमुख कारण है। फेफड़े के कैंसर से मरने वालों में ७८–६४ प्रतिशत धूम्रपान के कारण मरते हैं। बीड़ी और सिगरेट दोनों हानि करने में समान हैं। अल्पायु में धूम्रपान आरंभ करने वालों को शीघ्र रोग पकड़ लेता है। फेफडे के कैंसर से मृत्यु धूम्रपान प्रारंभ करने की उम्र, दैनिक धूम्रपान की मात्रा और अवधि पर निर्भर है। निष्क्रिय धूम्रपान करने वालों को भी इसका खतरा रहता है।

धूम्रपान के पुराने व्यसनियों में नये लक्षणों का उत्पन्न होना या पुराने लक्षणों में बिगाड़ होना कैंसर के होने का संदेह उत्पन्न करता है। भूख की कमी, भार में कमी, खांसी, आवाज में भर्राहट, निगलने में कष्ट, अचानक सांस उखड़ना, छाती में तीव्र वेदना, चेहरे या वक्ष भित्ति में सूजन फेफड़े के कैंसर के लक्षण हैं।

प्रायः रोग का पूर्वानुमान नहीं हो पाता और उपचार के बावजूद रोगी दो से पांच साल में मर जाता है। फेफड़े के कैंसर से मृत्यु से बचने का एकमात्र निश्चित उपाय धूम्रपान को अलविदा कहना है। आप के लिए बेहतर होगा कि आप जीवन और धूम्रपान में से किसी एक को अपने लिए चुन लें क्योंकि दोनों को आप एकसाथ नहीं पा सकते।

हृदय रोग से बचाव

श्रीहरी दत्तात्रेय जलूकर, पुणे

विश्व स्वास्थ्य संगठन की १९८० की वार्षिक रपट में मृत्युदर की सूची में हार्ट अटैक का स्थान नवां था। १९८७ की वार्षिक रपट में उसका स्थान पहला हो गया। आजकल मृत्यु के कारणों में कैंसर और हृदय रोग में प्रथम स्थान के लिए होड़ मची है। इनमें से हृदय रोग के निवारण के लिए पथ्य का पालन करना ही काफी है।

आजकल मध्यवर्गीय औसत भारतीय के रोजमर्रा आहार में तली हुई चीजों तथा मिठाई की मात्रा बढ़ती जा रही है। खास तौर से ४० वर्ष से ऊपर की उम्र के लोग जिह्वासुख के वशीभूत होकर आवश्यकता से अधिक खाया करते हैं। परिणामतः उनके शरीर में स्निग्धता बढ़ती रहती है।

इस अतिरिक्त स्निग्धता का पाचन करने के लिए वे आवश्यक व्यायाम भी नहीं करते। परिणामतः शरीर में पुष्टई और चरबी बढ़ती है। चरबी या मेद की वृद्धि ही कोलेस्टेराल की वृद्धि है। इससे शरीर का वज़न बढ़ता है और ब्लड प्रेशर बढ़ता है। रक्तवहनलिकाएं कड़ी होने लगती हैं। रक्त–प्रवाह में रुकावट पैदा होती है। कभी–कभी सीने में दर्द होने लगता है जिसे एंजाइना कहते हैं और यही है हार्ट अटैक की जड!

दीर्घायु तथा निरोग रहने के लिए नशे से दूर रह कर ध्यान, चिंतन मर्यादित आहार, नित्य पैदल चलने की आदत अत्यंत फायदेमंद है। चालीस से ऊपर जिनकी आयु है उन्हें सदा आत्मनिरीक्षण करते रहना चाहिए ।

कष्टदायी टान्सिल

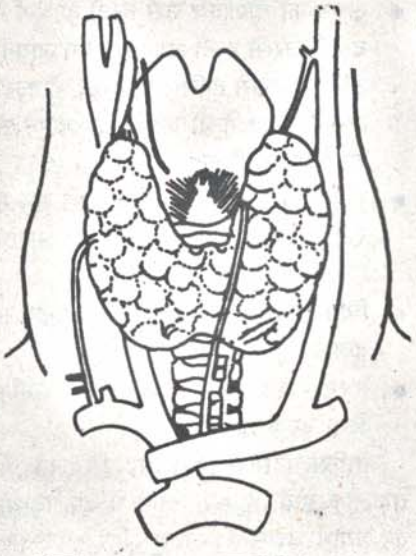

आयुर्वेद के अनुसार शरीर सप्तधातुओं से निर्मित है, जिसमें प्रथम धातु रस है। रसधातु रसवाहिनियों के माध्यम से समस्त शरीर में संचार कर उसके अंग–प्रत्यंग का पोषण करती है। अर्वाचीन चिकित्सा पद्धति के अनुसार भी शरीर में रक्त के अलावा एक प्रवाही पदार्थ होता है जो प्रोटीन और वसा से युक्त प्रायः श्वेत द्रव है। इसे लिंफ कहते हैं। यह रस रसवाहिनियों के माध्यम से संचार करता है रसवाहिनियों के रास्ते में स्थान–स्थान पर कई रसग्रन्थियों होती हैं। इन रसग्रन्थियां में से छनकर यह रस रक्त में जा मिलता है। इस रस का कार्य है वाह्य रोगाणुओं को पकड़कर ग्रन्थियों के पास रोक कर रखना और उनका विनाश। ऐसी ग्रन्थियां शरीर में अनेक स्थानों पर हैं और इन्हीं में से एक ग्रन्थि है टान्सिल। प्रकृति ने शरीर के संरक्षण के लिए जो अनेक सुरक्षा कवच बनाये हैं, उनमें से एक टान्सिल भी है।

टान्सिल की दो ग्रन्थियां होती है जो गले के पिछले भाग में छोटी जीभ के दोनों ओर होती है। इन ग्रन्थियों की रचना अन्य रस ग्रन्थियों के समान होती है और इन पर एक पतली श्लैष्मिक झिल्ली चढ़ी रहती है, जिसमें १५/२० छिद्र होते हैं। जन्म के समय टान्सिल बहुत छोटे होते हैं और शरीर के साथ धीरे–धीरे बढ़ते हैं। छः/सात वर्ष की आयु तक ये ग्रन्थियां अपना पूर्ण आकार प्राप्त कर लेती है।

टान्सिल ग्रन्थियां पहरेदार का काम करती है। ये ऐसे स्थान पर होती हैं जहां गले में नाक और कान से संबद्ध नलियां मिलती हैं। मुंह में प्रायः लाखों जीवाणु निरन्तर बने रहते हैं और श्वास प्रक्रिया में नाक में भी जीवाणु जाते रहते हैं। जब जीवाणु टान्सिल की ग्रन्थियों के पास से गुजरकर भीतर प्रवेश करने का प्रयास करते हैं तो ये ग्रन्थियां उन्हें पकडकर वहीं रोक लेती हैं तथा उन्हें निष्प्रभावी करती हैं। जब जीवाणु बहुत अधिक संख्या में होने के कारण ग्रन्थियां उन्हें निष्प्रभावी नहीं कर पाती तो इन ग्रन्थियों में सूजन हो जाती है जिसे टान्सिलाइटिस कहते हैं।

टान्सिल की ग्रन्थियों पर इस प्रकार भारी संख्या में जीवाणुओं का आक्रमण होने पर गले में दर्द होने लगता है, हल्की खराश हो जाती है और इन ग्रन्थियों में सूजन बढ़ने से ये लाल दिखाई देती हैं। इसके साथ शरीर में दर्द, सूखी खांसी, निगलने या घूंट लेने में तकलीफ, गले में चुभन आदि लक्षण पैदा होते है। कई बार जुकाम के बाद भी टान्सिल ग्रन्थियां विषाणुओं के आक्रमण से सूज जाती हैं। तब यह संसर्गजन्य बीमारी हो जाती है। छोटे बच्चों के गले में टान्सिल ग्रन्थियों की सूजन के कारण उन्हें बार–बार उल्टी भी आ सकती है। ग्रन्थियों की सूजन के कारण नाक से सांस लेने और छोड़ने में भी तकलीफ होने लगती है।

यदि ज्वर के साथ खांसी हो और ये अचानक उत्पन्न हो जायं तथा साथ में गले में कोई तकलीफ भी हो तो अधिकांशतः टान्सिल ग्रन्थियों का ही प्रकोप समझना चाहिए। गले में दर्द खराश और खांसी ये इसके प्रमुख लक्षण हैं। सामान्य तथा मध्यम

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे, लखनऊ

दर्जे का बुखार भी इसमें हो जाता है। क्वचित् शरीर में सूजन, सिरदर्द, उल्टी या मितली भी होती है। टान्सिल या तो लाल दिखाई देते हैं या उन पर लाली के बीच सफेद दाग भी नज़र आते हैं जो पीब के कारण बनते हैं। टान्सिलाइटिस जैसे ही लक्षण डिप्थीरिया में भी होते हैं। अतः यह आवश्यक है कि बच्चों के सामले में तत्काल इस बात की परीक्षा कर लेनी चाहिए कि कहीं डिप्थीरिया तो नहीं है। क्योंकि डिप्थीरिया जानलेवा बीमारी है और उसका इलाज योग्य चिकित्सक से तत्काल कराया जाना आवश्यक है। डिप्थीरिया में गले में या टान्सिल के ऊपर सफेद कड़ी झिल्ली बन जाती है और उसे निकालने के प्रयास में रक्तस्राव होता है। अतः ऐसी झिल्ली न होने पर डिप्थीरिया का खतरा नहीं रहता। आजकल बच्चों को डिप्थीरिया के बचाव हेतु टीका दिया जाता है, अतः डिप्थीरिया का प्रकोप प्रायः दिखाई नहीं देता।

प्रायः टान्सिलाइटिस सामान्य चिकित्सा से ठीक हो जाती है, परन्तु कुछ व्यक्तियों को बार–बार तकलीफ होती रहती है। उनकी टान्सिल ग्रन्थियां सूज जाती हैं और उनमें मवाद हो जाता है। यह गंभीर स्थिति है, जिसका इलाज योग्य चिकित्सक से तुरन्त कराना चाहिए। टान्सिल ग्रन्थियों की खराबी के कई भयंकर दुष्परिणाम हो सकते हैं, जैसे कान में संक्रमण, श्वसन क्रिया में कष्ट,

आखों में तकलीफ और बाद में हृदय और गुर्दो में भी संक्रमण हो सकता है। अतः टान्सिल ग्रन्थियों के सूजन पर कभी लापरवाही या असावधानी न बरतें और तत्काल इलाज करायें।

प्रायः टान्सिल ग्रन्थियों के बढ़ जाने पर उनको शस्त्रक्रिया द्वारा निकाल दिया जाता है। जैसा कि पहले बताया गया है, ये ग्रन्थियां शरीर के सुरक्षा कवच का अभिन्न अंग हैं, अतः इन ग्रन्थियों को निकाल देने पर शरीर की सुरक्षा पंक्ति निश्चय ही क्षीण हो जाती है। विशेषज्ञों में अभी भी इस बात पर सहमति नहीं है कि टान्सिल ग्रन्थियों को निकाल देना चाहिए या नहीं। विशेषज्ञों का एक वर्ग इन्हें सुरक्षा का अंग मानते हुए निकालने के पक्ष में नहीं है, जबकि दूसरा वर्ग इनमें संक्रमण होने पर पूरी तरह निकाल देने के पक्ष में है। परन्तु कई विशेषज्ञों का कहना है कि टान्सिल ग्रन्थियां तभी निकाली जायं जब उनका बार–बार संक्रमण हो और बीमारी गंभीर रूप धारण कर ले तथा ग्रन्थियां सूजकर इतनी बड़ी हो जायं कि खाने–पीने और सांस लेने में कठिनाई हो या ऐसी संभावना हो कि इन से संक्रमित होकर गुर्दे, हृदय, आंख और कान भी बीमारियों के शिकार हो जायेंगे।

टान्सिल ग्रन्थियों की सूजन पर कुछ सामान्य उपचार निम्नलिखित हैं :

- गरम पानी में नमक घोलकर उससे दिन में चार–पांच बार गरारे करें। प्रारंभिक अवस्था में गरारों से ही ग्रन्थियों का संक्रमण समाप्त हो जाता है। नमक के साथ पानी में हल्दी का चूर्ण भी मिला दें।
- छोटे बच्चों को गरम दूध थोड़ी हल्दी डालकर पिलायें ताकि गरम द्रव से गले को सेंक मिल सके।
- हल्दी और गुड की गोली या मिश्री मुंह में रखने से लार निकलेगी और उसे थूकते रहने से भी संक्रमण का प्रभाव कम हो जायगा।
- अंगूठे को गीलाकर उसे हल्दी के चूर्ण में दबायें जिससे हल्दी अंगूठे पर लग जायगी और तब उससे टान्सिल ग्रन्थियों को हल्दी लगायें। दिन में दो बार हल्दी लगाने से शीघ्र आराम मिलता है।
- गले में दर्द हेतु जीरा और चीनी मुंह में रखकर उसका रस चूसने से आराम मिलता है।
- चिकित्सक की सलाह से एण्टीबायोटिक्स दवा का पूरा कोर्स लें।
- गरम पानी में शहद, मिश्री और सैंधव नमक डालकर दें।

टान्सिलाइटिस होने पर निगलने में तकलीफ होती है, अतः खाने में द्रव पदार्थो का प्रयोग उत्तम है। सख्त और मसालेदार चीजों से परहेज करना चाहिए। भरपूर मात्रा में गरम दूध हल्दी डालकर पीना सर्वोत्तम है।

लखनऊ महोत्सव

29 नवम्बर – 5 दिसम्बर, 95

लखनऊ महोत्सव के कार्यक्रम

29 नवम्बर	5.00 सायं	उद्घाटन समारोह लखनऊ महोत्सव, शिल्प मेला, एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमः
	6.00 सायं	पं. हरिप्रसाद चौरसिया (बांसुरी वादन) पं. बिरजू महाराज (कत्थक)
30 नवम्बर	10.00 प्रातः	उद्घाटन–प्रदर्शनी राज्य संग्रहालय
	11.00 प्रातः	उद्घाटन–प्रदर्शनी राज्य अभिलेखागार, महानगर
	12.00 प्रातः	उद्घाटन–प्रदर्शनी उ.प्र.ललित कला अकादमी
	12.00 प्रातः	पतंग प्रतियोगिता–नदवा ग्राउंड
	6.30 सायं	सांस्कृतिक कार्यक्रम–जगजीत सिंह (गज़ल)
1 दिसम्बर	6.30 सायं	सांस्कृतिक कार्यक्रम : प्रभा भारती (कव्वाली) मुशायरा
2 दिसम्बर	11.00 प्रातः	तांगा दौड़
	2.00 अपरान्ह	फाइनल पतंगबाजी प्रतियोगिता
	6.30 सायं	सांस्कृतिक कार्यक्रमः हेमा मालिनी (मृत्य नाटिका)
3 दिसम्बर	9.00 प्रातः	विन्टेज कार रैली / प्रदर्शनी
	6.00 सायं	सांस्कृतिक कार्यक्रमः सिंह बन्धु (गायन) कवि सम्मेलन
4 दिसम्बर	6.30 सायं	सांस्कृतिक कार्यक्रमः
	6.00 सायं	गुलामी अली (गज़ल)
5 दिसम्बर	5.30 सायं	समापन समारोह सांस्कृतिक कार्यक्रम हरिहरन (गज़ल)

सांस्कृतिक कार्यक्रम स्थल बेगम हज़रत महल पार्क, लखनऊ

उत्तर प्रदेश पर्यटन निदेशालय, 3 नवल किशोर मार्ग, लखनऊ (उ. प्र.) दूरभाष : 228349, 225165

गले की खराश

डा. अयोध्या प्रसाद अचल, गया

गला या कण्ठ प्रदेश शरीर का एक अत्यधिक संवेदनशील एवं महत्वपूर्ण अंग हैं। यहीं पर टान्सिल (गल–तुण्डिका) एवं एडीन्वायड (कण्ठ–शालूक) नामक ग्रन्थियां स्थित हैं। यह मांस से बना है। इसी में उत्पन्न होने वाले शोथ, प्रदाह तथा इसके व्रणयुक्त होने को ही हम बोलचाल की भाषा में गले की खराश, गला बैठना, गला फंसना, या कण्ठ–प्रदाह आदि नामों से पुकारते हैं। जब भी हम गले का दुरुपयोग करते हैं तो गले की खराश के रूप में इसका फल भुगतना पड़ता है।

गले की खराश कम से कम और अधिक से अधिक भी हो सकती है। अधिक होने पर गला पूरी तौर से काम करने से इनकार करने लगता है। न तो हमारी आवाज ही ठीक हो निकल पाती है और न हम किसी चीज को आसानी से निगल पाते हैं। गले में हल्का–हल्का दर्द और चुभन की सी प्रतीति होने लगती है।

खराश नई भी हो सकती है और उपेक्षा करने पर पुरानी भी। पुरानी होने पर यह जीर्ण एवं जटिल रूप धारण कर लेती है।

गले की खराश का कारण

खराश किसी एक या अनेक कारणों के सम्मिलित प्रभावस्वरूप भी उत्पन्न हो सकती है। इसके उत्पन्न करनेवाले कारणों में से प्रधान निम्न है :

- वाणी का दुरुपयोग जैसा कि गाने वाले, भाषण देने वाले या नारेबाजी करने वाले करते हैं।
- मिर्च–मसाले, अचार, कांजी आदि दाहक पदार्थो का अत्यधिक सेवन।
- खूब गर्म चाय, काफी आदि पेय पदार्थो का अति सेवन।
- ठण्डी पर गर्म और गर्म पर ठण्डी चीजों को लेना – यथा काफी पीकर आइस–क्रीम खाना या आइस–क्रीम खाकर ऊपर से काफी पीना।
- धूम्रपान या मद्यपान करना।
- दाहक एवं उत्तेजक पदार्थो से युक्त भाप या गैसों को सूंघना या उनका बरबस मुंह–नाक में प्रवेश कर जाना।
- अति ठण्डे पेयों (यथा फ्रीज का पानी, बरफीले शरबत, कोल्ड ड्रिंक आदि) का अधिक मात्रा में या गर्मी से आकर एकाएक पान करना।
- गले में सहसा ठण्ड लगना।
- गलतुण्डिका, कण्ठशालूक, श्वासनली आदि में विकार होना।
- चोट या संक्रमण
- एलर्जी या असात्म्य।

लक्षण या चिन्ह

प्रारंभ में स्वरयन्त्र ग्रासनली तथा आस–पास के अन्य भागों में लाली आ जाती है। श्लैष्मिक कला में शोथ उत्पन्न हो जाता है। निगलने में कठिनाई होने लगती है। गले में झिनझिनी या टपक–सी महसूस होने लगती है। हल्की–हल्की खांसी भी बनी रहती है।

उपेक्षा करने पर ये ही लक्षण उग्र रूप धारण कर लेते हैं। खांसी शुरू में सूखी होती है पर बाद में कफ भी आने लगता है। गला बैठ जाता है। आवाज निकलना मुश्किल होने लगता है। कभी–कभी कुछ दिनों के लिए आवाज लगभग खत्म सी हो जाती है। गले में सूखापन और जलन–सी महसूस होने लगती है। ठोस खाद्य पदार्थो को निगलने में कठिनाई होने लगती है। कभी–कभी दर्द भी महसूस होने लगता है।

उपचार

आयुर्वेद में निदान का परिवर्जन अर्थात् जिस कारण से रोग की उत्पत्ति हो रही है उसका परित्याग ही उपचार का सर्वप्रथम और सबसे महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। वह बना रहे तो अन्य सभी उपचार व्यर्थ सिद्ध होंगे। अगर आप गले का सोच–समझ कर और सही ढंग से उपयोग करें, सर्दी–गर्मी की अति से बचे रहें और आहार–विहार में आवश्यक संयम बरतें तो शायद आप इस रोग का शिकार ही नहीं होंगे। लेकिन प्राय: ऐसा होता नहीं। आज के युग में जोश में आकर होश खो बैठना एक मामूली बात है। खाने–पीने में असंयम खासकर नव धनाढ्य वर्ग में एक आदत सी बनती जा रही है। फलतः गले की खराश एक आम शिकायत का रूप धारण करती जा रही है। अगर आप भी इसकी गिरफ्त में आ गए हैं तो तुरन्त निम्न बातों की ओर ध्यान दें:

गले को पूरा आराम दें, सादा और सुपाच्य/विशेष रूप से पेय रूप में भोजन लें, गले में प्रदाह उत्पन्न करने वाले पेयों या खाद्य पदार्थो का सेवन न करें, एक गिलास गर्म पानी में एक चम्मच नमक मिलाकर दिन में ३ बार गरारे करें, गर्म भाप लें। पानी में थोड़ा सा कपूर मिला दें तो और भी अच्छा है, गले के अग्र भाग को बाहर से भी सेकें, धूम्रपान तथा मद्यपान का परित्याग कर दें, जिस द्रव्य के सेवन से भी तकलीफ बढ़ती हो, एलर्जी हो, उससे दूर रहें। हो सकता है प्रारम्भिक अवस्था में मामूली उपायों से ही आपकी शिकायत दूर हो जाए। अगर तकलीफ कुछ बढ़ गई हो तो कुलंजन या मुलेठी के छोटे–छोटे टुकड़े, मुलेठी का सत्व (रब्बेसूस) खदिरादि बटी, कर्पूर बटी कोई भी पूतिरोधी बटी मुंह में रखकर चूसें। धीरे–धीरे उसका रस गले में नीचे जानें दें। बहुत मुमकिन है इसी से आराम आ जाए। अन्यथा फिर किसी योग्य चिकित्सक की मदद लें।

मैं हूं खांसी आप की

वैद्य अयोध्या प्रसाद अचल, गया

यूं तो आम लोगों में मैं "खांसी" के नाम से ही जानी जाती हूँ पर आयुर्वेदवाले प्यार से मुझे "कास" भी कहते हैं। लगता है मेरी आवाज़ के फूटे हुए कांसे के पात्र से निकली आवाज के समान होने से ही उन्होंने मेरा यह नामकरण कर दिया है।

व्यापकता की दृष्टि से रोगों की लिस्ट में मेरा नाम सबसे ऊपर नहीं तो सम्भवतः कुछ ही नीचे होगा। मैं अकेली तो आती ही हूँ अन्य रोगों की सहगामिनी के रूप में भी प्रायः आ टपकती हूँ। सर्दी–जुकाम, दमा, यक्ष्मा (तपेदिक) आदि के साथ मेरा चोली–दामन का सम्बन्ध है।

मैं कुछ अन्य ज़लील रोगों के समान भीतरघात नहीं करती। छिप कर वार करना मेरा स्वभाव नहीं। जब जिसके पास जाती हूँ डंके की चोट पर जाती हूँ। जिसके पास जाती हूँ न केवल उसे बल्कि आसपास वालों को भी मेरी उपस्थिति का एहसास हो जाता है।

मेरे आने का कोई मुकर्रर वक्त नहीं है। जब–तब वक्त–बेवक्त जब जिसके पास चाहती हूँ पहुंच जाती हूँ। रात के वक्त पहुँची तो ज्यादा ही तंग करती हूँ। इसी वजह से कभी लोग मुझसे चिढ़ भी जाते हैं। अब आप ही बताइए मैं क्या करूं। मैं भी तो अपने स्वभाव से मजबूर हूँ।

कभी–कभी बैमौके पहुँच जाने पर लोग मुझे दबाने या छिपाने की कोशिश करते हैं। ऐसे मौके पर वे रहीम की यह उक्ति भूल जाते हैं:

खैर, खून, खांसी, खुशी बैर लोभ, मधुपान।
रहिमन दाबे ना दबे, जाने सकल जहान।।

जितना ही वे मुझे दबाने की कोशिश करते हैं उतना ही मैं उनके काबू से बाहर होती जाती हूँ।

यूं तो आयुर्वेद के रसिया मेरे पांच रूपों की चर्चा करते हैं–

यथा वातज, पित्तज, कफज, क्षतज और क्षयज। पर आम लोग मुझे दो रूपों में ही अधिक जानते हैं–

एक सूखी खांसी या शुष्क कास जिसमें आवाज तो होती है पर निकलता कुछ नहीं। दूसरी गीली तर या बलगमी खांसी। इसमें खांसी के वेग के साथ साथ श्लेष्मा या बलगम भी आता है किसी किसी को कभी–कभी बलगम के साथ खून भी आ जाता है। ऐसा प्रायः क्षयज या क्षतज कास में होता है। चिकित्सक भी चिकित्सा की दृष्टि से मेरे इन्हीं दोनों रूपों को अधिक महत्व देते हैं।

चिकित्सीय दृष्टि से ही मेरे दो और रूप भी आकर्षण के केन्द्र हैं। वृद्धावस्था में उत्पन्न जराजन्य–कास और बालकों में उत्पन्न कुक्कुर–कास या काली खांसी। कुछ वृद्धों के पास पहुंचकर तो मैं उनके शेष जीवन भर उन की सहगामिनी बन कर ही रह जाती हूँ। बच्चों में से मैं केवल उन्हीं के पास जाती हूँ जिनके अभिभावक समय रहते त्रिपुल–ऐन्टिजेन के टीके नहीं लगवाते अथवा उनकी उचित देखभाल नहीं करते। अभिभावकों के चेत जाने पर में उन्हें प्रायः छोड़ देती हूँ। बच्चों पर मुझे बड़ी दया आती है।

लगता है आप मुझे अपना दुश्मन समझ रहे हैं। तभी इतनी बेमुरव्वती से पेश आ रहे हैं। अभी तक आपने मुझ से यह भी पूछने की तकलीफ गवारा नहीं की कि मैं आपके पास आती क्यूं हूं। मेरे आने का मकसद क्या है। और आती हूँ तो कैसे और किस रास्ते से आती हूँ। जाती हूँ तो कैसे जाती हूँ। इस आने–जाने में मुझे किन मुसीबतों का सामना करना पड़ता है।

अरे! अभी भी आप चुप हैं। बेमुरव्वती की भी एक हद होती है। खैर न बोलिए आप। मैं तो आपको अपनी बात सुनाकर ही रहूंगी।

पहली बात तो यह है कि मैं आपकी दुश्मन नहीं दोस्त हूँ हमदर्द हूँ। मै आपके पास जब भी आती हूँ आपको किसी न किसी मुसीबत से छुटकारा दिलाने के लिए ही आती हूँ। यह मुसीबत बाहरी भी हो सकती है तथा अन्दरूनी भी। बाहरी तत्वों में मुख्य हैं धुआं, धूल, झार, असावधानीवश खाते समय श्वासनली में पहुंचे अन्न के कण आदि। अन्दरूनी तत्वों में मुख्य है वायु द्वारा प्रेरित मुख की ओर आया आमरस, गले, श्वास–नली या श्वसनिकाओं में चिपकी श्लेष्मा। यदि समय रहते इन तत्वों को बाहर न निकाल दिया जाए तो ये घनीभूत होकर श्वसन–पथ को अवरूद्ध कर सकते हैं। इसी काम को अन्जाम देने के लिए मैं आपके पास आती हूँ। कभी–कभी आप ही के अन्दर कहीं गहराई में छिपे किसी रोग रूपी शत्रु – यथा यक्ष्मा, क्षत, कैन्सर, ट्यूमर, प्ल्यूरिसी आदि – के प्रति आप को आगाह कर देना मैं अपना फर्ज समझती हूँ। यदि आप मेरे संकेत (सिगनल) को पहचान कर सतर्क हो गए तो आनेवाली एक बड़ी मुसीबत से बच जाते हैं। अन्यथा यदि आपने मेरी अनसुनी कर दी उपेक्षा से मुंह फेर लिया तो भगवान ही आपका मालिक है। अपनी सामर्थ्य से अधिक कभी–कभी जब आप काफी देर तक भाषण देकर या चीख–चिल्ला कर अपने ही गले पर जुल्म ढाने लगते हैं तो मैं आकर आपको आराम करने के लिए मजबूर कर

शेष भाग पृ ३२ पर

जुकाम की देखभाल

विजय सिंह, लखनऊ

जुकाम एक साधारण रोग है परंतु उपेक्षा से कष्टदायक हो सकता हैं। यह पाचन एवं श्वसन संस्थान का रोग है जिसके लक्षण श्लैष्मिक कलाओं में प्रकट होते हैं। बड़ी आंत में सूजन, आंव आना, पुराना अतिसार आदि पुराने जुकाम का ही परिणाम है। गलें और नाक का जुकाम बढ़कर कानों में पहुंचता है।

कारण

सर्दी में पर्याप्त कपड़े न पहनना, गर्मी में तेज धूप में पसीने में तरबतर हालत में घर आते ही ठंडा पानी पी लेना, ठंडा व बासी खाना खाना, चिकने पदार्थ खाकर तुरंत पानी पी लेना, बाजार की खुली चीज़ें खाना, किसी जुकाम के रोगी के रूमाल का उपयोग करना इस रोग के कुछ प्रमुख कारण हैं।

ठंड लगने से हमारे शरीर के रोमकूप बंद हो जाते हैं। फलस्वरूप प्रकृति इन रोमकूपों के द्वारा शरीरस्थ दूषित पदार्थ बाहर नहीं निकाल पाती। तब प्रकृति नाक की झिल्ली में फैलाव करती है। इस प्रकार ये दूषित पदार्थ जलीय रूप में कफ के साथ निकलने लगते हैं जिसे हम सर्दी–जुकाम कहते हैं।

लक्षण

यह एक संक्रामक रोग है जो परिवार में बच्चे से शुरू होकर बड़ों तक पहुंचता है। इसमें गले में खराश होती हैं, जीभ गंदी रहती है, नाक बंद हो जाती है, नाक से पतला पानी गिरता है, गला, तालू और ओंठ सूखते हैं, खुजली मचती है, कनपटी में दर्द होता है, गला बैठ जाता है, प्यास लगती है, शरीर सदा गरम रहता है, सिर भारी रहता है, नाक की सूंघने की शक्ति जाती रहती है, कभी–कभी नाक से खून भी बहने लगता है। छीकें आतीं हैं, आंखें लाल रहती हैं और उनसे पानी आता है, सांसें गरम रहती हैं, नाड़ी की गति तेज होती है, भूख की कमी होती है, सारे शरीर में दर्द रहता है और सूखी खांसी आती है।

उपचार

- लहसुन की ४–६ कलियां एक कप पानी में उबालकर पकायें। छानकर चुटकी भर नमक और काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पानी पी जायें।
- किसी भगोने में एक चम्मच घी गरम करें उसमें आधा चम्मच काली–मिर्च का चूर्ण मिलायें। फिर उसमें इमली का पानी डालकर खौलायें। इसमें धनिये के बीज का चूर्ण और कढ़ी पत्ता डालें और स्वादानुसार नमक डालकर गरमागरम पियें।
- जुकाम में सूखी खांसी होने पर सूजी का पतला हलवा बनाकर रात में सोने से पहले गरमागरम चाट कर खायें और पानी न पियें तथा सो जायें।
- एक चम्मच शहद में अदरक के रस की कुछ बूंदें मिलाकर धीरे–धीरे चाटें, इससे गले की खराश में आराम आयेगा।
- २५० ग्राम भिंडियों को काटकर पानी में उबालें। पक जाने पर छान कर पानी की गरमागरम चुस्कियां लें। सूखी खांसी में लाभ होगा।
- सर्दी के पुराने रोगी जाड़ों में रात में ५ अदद बादाम पानी में भिगो दें। सवेरे उन्हें छीलकर चबा–चबाकर खायें।
- सोने से पहले पैरों के तलुओं पर गरम कड़ुआ तेल मलें।
- कटोरी में थोड़ा पानी गरम करें उसमें चुटकी भर हल्दी और नमक मिलाकर दिन में तीन बार पियें। दो दिन में खांसी गायब हो जायगी।
- एक गिलास गुनगुने पानी में एक चम्मच नमक मिलाकर दिन में कई बार गरारे करें। इससे गले व नाक का कफ पिघलकर निकलेगा।
- आधा किलो पालक की पत्ती, पाव भर गाजर, एक पाव टमाटर, थोड़ी हरी धनिये की पत्ती तथा १० ग्राम ताजा अदरक को खूब महीन काटकर एक किलो पानी में कुकर में उबालें। फिर एक पतले कपड़े से छानकर पानी को दिन में तीन बार में गरमागरम पियें। इससे पेट साफ हो जायगा।
- सर्दी–जुकाम होते ही रोगी चौबीस घंटे का उपवास करें। उपवास काल में रोगी अधिक से अधिक नींबू काटकर चूसता रहे या शीतऋतु में गरम पानी में और अन्य मौसमों में साधारण पानी में नींबू निचोड़कर पियें। दूसरे दिन नाश्ते एवं भोजन में रसदार हरी तरकारियों एव उनका सूप नीबू संतरा, मुसबी चकोतरा, अंगूर, अनन्नास आदि का भरपूर सेवन करें। दूध में मुनक्का उबालें और मुनक्के को खाते हुए दूध पियें।

सर्दी-जुकाम की प्राकृतिक चिकित्सा

इस रोग का सही इलाज शरीर की सफाई करना है। इसके लिए नींबू रस के हलके गर्म पानी की बस्ति (एनिमा) लेकर

आंतों को साफ कर देना चाहिए। इस क्रिया को तब तक दुहराते रहना चाहिए जब तक सारा मल निकल कर पेट साफ न हो जाय।

प्राकृतिक चिकित्सा में जुकाम में उपवास करने और फलाहार करने की सलाह दी जाती है, जब तक जुकाम के सभी लक्षण समाप्त न हो जायें। यदि उपवास संभव न हो तो दो–तीन दिन रसाहार करें। सुबह–शाम, दोपहर को किसी भी फल का रस लेकर आराम करें और प्यास लगने पर गरम–गरम पानी पीयें। प्रतिदिन एनीमा लेकर पेट साफ करें। तीन दिन में ही तबीयत ठीक हो जायेगी।

जुकाम से पीड़ित रोगी को प्रतिदिन प्रातः काल जलनेति एवं सूत्र नेति द्वारा नाक व गले की सफाई करने के बाद कपाल–भाती प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

पुराने से पुराने जुकाम से तत्काल राहत दिलाने का अचूक उपचार पैरों का गर्म स्नान है। बीस मिनट पैरों को गरम पानी में रखें। एक बाल्टी में इतना गरम पानी लें जो सहने योग्य हो। रोगी को कुर्सी पर बिठाकर पैरों को गरम पानी से भरी बाल्टी में रखना चाहिए। पानी घुटने के नीचे तक आना चाहिए।

पैरों को गरम पानी में रखने से पैरों की धमनियां फैलेंगी और उन फैली हुई धमनियां को अतिरिक्त रक्त की आवश्यकता होगी। अतः शरीर में ऊपर जहां भी रक्त ने अवरोध उपस्थित कर रखा है, वह दूर हो जायगा और उस स्थान का कष्ट कम होगा। अवरोध का प्रकट रूप चाहे दमे के रूप में हो या सिरदर्द के रूप में हो या वायु वेग के कारण रोगी प्रलाप की अवस्था में हो पैरों का गर्म स्नान उससे मुक्ति दिलायेगा।

पथ्य

प्रातः एक गिलास गरम पानी में एक नींबू का रस, २ चम्मच शहद और एक चम्मच अदरक का रस मिलाकर लें।

नाश्ते में अंगूर, सेब, अमरूद, संतरा, चीकू, पपीता आदि में से किसी एक फल का सेवन करें।

दोपहर में उबली सब्जी या सिर्फ फलाहार (केले को छोड़कर) करें।

शाम को ४–५ बजे सब्जियों का सूप या फलों का रस लें।

रात्रि में केवल फल लें।

अपथ्य

दूध मक्खन, पनीर, चाकलेट, कॉफी, चाय, मैदा और सफेद चीनीयुक्त कोई पदार्थ न लें।

पृष्ठ ३० का शेष भाग

देती हूँ। सामर्थ्य से अधिक शारीरिक श्रम कर जब आप थकान से चकनाचूर होने लगते हैं तो भी मुझे बरबस आकर आपकी रक्षा करनी पड़ती है। अब आप ही फैसला कीजिए कि मैं आपकी दोस्त हूँ या दुश्मन!

अब आपके खुराफाती दिमाग में यह सवाल जरूर कौध रहा होगा कि रोगों के विशाल साम्राज्य की मुझ जैसी मामूली एवं अदना हस्ती इस महत्वपूर्ण काम को करने में कैसे समर्थ हो सकती हैं। शायद आप नहीं जानते कि जब धूल, धुआं, जीवाणु, संक्रमण आदि श्वसन पथ में पहुँचकर प्राणवायु को दूषित कर देते हैं तो उसे अपना नियमित फर्ज अदा करने में कठिनाई होने लगती है। शरीर के अन्दर उत्पन्न दोष या विकृतियां भी इसी तरह की रुकावट पैदा करते है। ऐसी हालत में प्राणवायु उदानवायु के कन्धे से कन्धा मिलाकर इन प्रतिजीवियों को बरजोरी श्वसन–पथ से बाहर ठेलने की कोशिश करता है। प्रतिजीवी भी अपनी शक्ति भर प्रतिरोध करने से बाज नहीं आते। प्राणवायु और जोर लगाता है इस खैंचतान में शोर–शराबा होना स्वाभाविक हैं। आप ने मजदूरों को काम करते देखा होगा। वे जब भी जोर लगाते हैं 'जोर लगा के हैया' के शब्द के साथ लगाते हैं। यही काम प्राणवायु एक–दूसरे को हिम्मत बंधाने के लिए करते हैं। आयुर्वेद वालों ने इसी आवाज की तुलना कांसे के फूटे हुए बरतन से निकली आवाज के साथ की है – खों–खों ठों–ठों।

मैं आती भी हूँ तो आने के पहले आपको आगाह करती हुई ही आती हूँ। गले में खुश्की, खराश, कांटों की सी मन्द मन्द चुभन, हल्का–हल्का दर्द, कभी–कभी निगलने में कठिनाई आदि आपको मेरे आने की पूर्व सूचना दे देते हैं। फिर भी आप ध्यान न दें तो मेरा क्या दोष?

कभी–कभी तो मैं आई नहीं कि देखते ही आप के माथे पर बल पड़ गए। आप जाहिलों की तरह बिना समझे–बूझे कही–सुनी बातों के आधार पर चूरन, चटनी, गोली, सीरप आदि गले के नीचे उतार कर मुझसे पिण्ड छुड़ाने की कोशिश करने लगते हैं। यह भी कोई बात हुई। कुछ मेरी भी तो सुनिए–समझिए – हाले दिल सुनाने में थोड़ा वक्त तो लगेगा ही।

मेरे आने का मकसद पूरी तरह समझकर ही कोई कदम उठाइए आपकी समझ न काम कर रही हो तो किसी योग्य चिकित्सक की सलाह लीजिए। हो सकता है वह आपको सही निदान तक पहुंचा दे। आपके अन्दर छिपे रहस्यों पर से पर्दा उठा दे।

लगता है आपने औरतों को पहचानने का गुर सीखा ही नहीं। अरे मुझे काबू में करना है तो पहले मेरी कमजोरियों का – उन स्थलों को पहचानिए – खोजिए जहां मैं छिपकर रहती हूँ। हद हो गई! यह भी मुझे ही आपको बतलाना पड़ रहा है। मेरे कमजोर स्थल हैं– मस्तिष्क (मस्तिष्कावरण में खांसी का केन्द्र, गला, छाती और फेफड़े) इन पर काबू पर लीजिए – इन्हें शुद्ध और निर्मल बना लीजिए। मैं आसानी से काबू में आ जाऊंगी। इस मामले में भी सही मार्ग–दर्शन के लिए विशेषज्ञ की सलाह जरूरी है। अन्यथा आप फिर गच्चा खा जा सकते हैं।

उम्मीद है अब कभी भूलकर भी आप मेरी उपेक्षा नहीं करेंगे। मुझे मामूली समझने की भूल न करेंगे। अच्छा अलविदा!

बच्चों की कुक्कुर खांसी

वैद्य विनायक भास्कर म्हैसकर, बड़ोदरा

कुक्कुर खासी अथवा हूपिंग कफ को महाराष्ट्र में डांग्या खोकला और गुजरात में मोटी अधरस कहते हैं, जो विशिष्ट प्रकार के सूक्ष्म जीवाणुओं के कारण होती है। भारतवर्ष में सर्वत्र बच्चे इससे आक्रांत होते हैं। यह एक से पांच वर्ष की उम्र में सर्वाधिक पाई जाती है। शीत ऋतु के अंत में और बसन्त में इस रोग का एकदम फैलाव देखने को मिलता है। किन्तु यह अन्य ऋतुओं में भी होता है और हवा के जरिये फैलता है। कुक्कुर खांसी तेज जुकाम से आरंभ होती है। खूब छीकें आना, आंखें लाल होना, आंखों से पानी आना, ऐसे लक्षण दो चार दिन रहते हैं। रात में खांसी विशेष आती है। खांसी के एक से एक जोरदार अनेक वेग आकर अंत में गले से विशिष्ट प्रकार की जोरदार आवाज निकलती है। सांस लेने की क्रिया के अंत में यह विशिष्ट आवाज होना इस रोग की विशेष पहचान है। इस प्रक्रिया में बच्चा खूब थक जाता है और शिथिल होकर कुछ देर तक अचेतन–सा पड़ा रहता है। ऐसे खांसी के दौरे आने पर कफ निकलता नहीं। कई दौरों के अंत में उल्टी हो जाती है। कुछ भी खाने पर खांसी का दौरा आकर उल्टी होना सामान्य रूप से इस रोग में होती हैं। ऐसी कष्टकारक खांसी और बारंबार होने वाली उल्टी से बच्चे थोड़े ही दिनों में खूब कमजोर हो जाते हैं, उनका वजन कम हो जाता है। प्रारम्भ में रात में अधिक आने वाले खांसी के दौरे बाद में दिन में भी आने लगते हैं। खाना खाने, दौड़ – भाग करने से और रोने पर भी तुरन्त खांसी आती है। ऐसे वेगों से चौकन्ना होकर खेलता हुआ बच्चा एकदम से भयभीत होकर माता–पिता या अन्य किसी परिवार के सदस्य के निकट जाकर उसे जोर से पकडता है और फिर विवश होकर खांसने लगता है। कमजोर होने पर बच्चे अनेक उपद्रवों से पीड़ित होते हैं।

आजकल इसकी रोकथाम के लिए टीका उपलब्ध है। इससे कुक्कुर खांसी का प्रसार कुछ कम हो गया है। फिर भी कई शहरी या देहाती इलाकों में बच्चे इससे आक्रांत जरूर होते हैं।

कुछ अनुभूत घरेलू इलाज

- एक पारोसा पिंपल (मराठी) का बडा वृक्ष होता है जिसके पत्ते पीपल के पत्तों के समान होते हैं। यह सदा हरित रहता है व इसकी छाया घनी होती हैं। इसके फूल पीले होते हैं, जिन्हें तोड़ने पर दूध निकलता है। **हिंदी** में इसे *गजदंड* या *पारस पीपल* कहते हैं। **गुजराती** में *पारस पिपलो* और **लैटिन** में *थेस्पेसिया पापुलनिया* कहते हैं। सड़कों के किनारे इसे बगीचों में आजकल सर्वत्र उगाते हैं।
- उपचार के लिये इसके पत्तों का उपयोग करते हैं। खूब बड़े पांच पत्ते काटकर बारीक टुकड़ें बनाकर डेढ़ कप पानी में उबालें। पौन से एक कप शेष रहने पर उतार कर ढक रखें। पत्ते नीचे बैठ जायें तो छान लें। स्वाद के लिये इसमें एक से दो चम्मच शक्कर डालकर एक से दो चम्मच काढ़ा थोड़ी–थोड़ी देर पर बारंबार देते रहें। इस प्रकार बनाया क्वाथ दिन में १ से २ कम तक दे सकते हैं। खांसी के वेग कम करना, उल्टी को रोकना, कफ को आसानी से निकालना इस प्रकार की उपयुक्त क्रिया इससे होती है। स्वाद में यह कुछ कसैला और कड़वा होता है अतः शक्कर मिलानी चाहिए। रोज ताजा काढ़ा एक या दो बार बना लेना चाहिये।
- मौलसरी वृक्ष जिसे **मराठी** भाषा में *बोरसरी* व **लैटिन** में *मिमासाप्स एलेंगी* नाम से जाना जाता है। सदाहरित शोभायमान वृक्ष सर्वत्र एवं सड़कों व उद्यानों में कई बार रास्ते के दोनों ओर भी लगाया जाता है। इसके फूल बहुत नाजुक और सुगंधित होते हैं। जिनमें सूखने के बाद भी बहुत समय तक सुगंध बनी रहती है। कुक्कुर खांसी के उपचार में इसके फूलों का उपयोग करते हैं। ४०–५० ताजे या सूखे फूल लेकर उनको एक कप उबलते हुए पानी में डाल तुरन्त ढक देना चाहिए। कुछ ठंडा होने पर छान कर रुचि के अनुसार शक्कर मिलाकर बारंबार एक–एक चम्मच पिलाते रहना चाहिये। फूलों का स्वाद भी कुछ कड़वा कसैला होता है। यह पानी सुगंधित होता है और इससे भी कफ पतला होने में, उल्टियां एवं खांसी के वेग घटने में काफी लाभ होता है। अवलेह विधि से इनका अवलेह (चटनी) बनाकर भी देते हैं।
- एक अन्य वनौषधि जिसे **मराठी** भाषा में *पिवलाचांफा* **गुजराती** में *पीचोचंपो* या *रामचंपो* व **हिन्दी** में *चंपा–चंबा* नाम से जानते हैं। इसका **वानस्पतिक नाम** *माइकेलिका चंपक* है व यह भी कुक्कुर खांसी में लाभकारी है। इसका बड़े आकार का वृक्ष प्रायः सभी बगीचों में लगाया

शेष पृ. ३४ पर

कुक्कुर खांसी का घरेलू इलाज

कुक्कुर खांसी छोटे बच्चों में होने वाली छूत की बीमारी हैं। सांस लेने वाली नली की बीमारियों में कुक्कुर खांसी का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

रोग के आरम्भ के ७ से १० दिन बाद रोगी प्रथम हल्का – सा बुखार महसूस करता है। इसके बाद सर्दी, जुकाम, आंखों से पानी आना, थोड़ी–थोड़ी खांसी आदि लक्षण दिखते हैं। रोग के अंतिम चरण में खांसी के दौरे आते हैं। रोगी बहुत देर तक खांसता ही रहता है। देर तक ऊर्ध्वश्वसन (खांसी) होने से बच्चे को प्राणवायु (आक्सीजन) कम मिलती है जिसके कारण बच्चा काला–नीला पड़ जाता है। इसलिये इसे काली खांसी भी कहते हैं।

गले में अटका हुआ कफ निकालने के लिये रोगी बहुत देर तक खांसता ही रहता है और अन्त में उल्टी कर देता है। खांसते समय अटकी हुई सांस को रोगी जब जोर से लेता है तब "हुप" जैसी आवाज गले से निकलती है, इसलिए इसे "हूपिंग कफ" कहते हैं। एक बार खांसी शुरू हो गयी तो वह ६ सप्ताह तक रहती है। इसमें दवा का असर बहुत कम होता है। दिमाग के ऊपर सूजन आने से कभी–कभी रोगी को झटके आते हैं। फेफड़ों की नाजुक पेशियों कमजोर होने से और जोर–जोर से खांसने से नाक और आंखों की रक्तवाहिनी फट जाती हैं और इसी वजह से आंखें लाल होती हैं। कभी–कभी मृत्यु भी हो जाती है।

घरेलू इलाज

इलाज से खांसी का वेग कम हो जाता है खांसी के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले उपद्रव से रोगी का बचाव किया जा सकता है।

- आधा कप दूध में आधा चम्मच हल्दी उबालकर दिन में दो वक्त देना चाहिए।
- भिलावे का तेल दो या तीन बूंद आधा कप दूध के साथ दिन में दो बार पांच दिनों तक देना चाहिए। पित्त प्रकृति के रोगी को तेल की केवल एक बूंद दें।
- कृष्ण कासार पत्ते का स्वरस या चूर्ण शहद के साथ दिन में दो या तीन वक्त १ या २ चम्मच मात्रा में देने से खांसी बहुत जल्दी कम होती है।
- कासमर्द वनस्पति का छोटा ३ फिट का पौधा रहता है। वर्षा काल में यह वनस्पति भारतवर्ष में हर जगह खूब उगती है। **मराठी** में इसे *कासमर्द, कासविंद या कासार* कहते हैं। **बंगला** में *केसेन्दा,* **तमिल** में *पेयावेरी,* **तेलुगु** में *कासिन्द* और **गुजराती** में *कासेदरो* कहते हैं। इस पौधे के पत्र संयुक्त, एकान्तर होते हैं। प्रत्येक वृन्त में प्रायः पांच–पांच पत्रक होते हैं। पुष्प–पीतवर्ण के और छोटे होते हैं। इसकी ३–४ इंच लम्बी फलियां पतली और गोलाकार होती हैं। प्रत्येक फली में में १०–३० बीज होते हैं। वर्षा काल में इस वनस्पति के पत्तों का स्वरस व अन्य ऋतु में इस वनस्पति को सुखाकर इसका चूर्ण शहद के साथ दे सकते हैं।

पृ ३३ का शेष भाग

जाता है। जिसके फूल पीले वर्ण के अंगुलियों के समान लम्बे या उससे भी थोड़े लम्बे आकर्षक और सुगंधित होते हैं। दक्षिण भारत में यह वृक्ष अधिक होता है। उपयुक्त अंग (कुक्कुर खांसी में) फूल है। ४–६ फूलों को डेढ़ कप उबलते पानी में थोड़ा मसलकर डालना चाहिये। ढक्कन अधखुला रखकर कुछ देर तक उबलने देना चाहिए। फिर उतारकर ठंडा होने पर छान लेना चाहिए। यह रुचि में थोड़ा कड़वा कसैला और कुछ तीखा भी होता है। रुचि के अनुसार शक्कर मिलाकर बारंबार थोड़ा–थोड़ा देते रहना चाहिये। इसका अवलेह बनाकर भी दे सकते हैं।

परम्परागत उपचारों में "डांग्या खोकला" अथवा कुक्कुर खांसी के लिये महाराष्ट्र में "बकुलपंचकावलेह" एक प्रसिद्ध एवं अनुभूत उपचार है जिसकी मात्रा एक से डेढ़ चम्मच दिन में ३–४ बार है।

- फुलाई हुई फिटकरी की लाई अथवा शुद्ध स्फटिक का कपड़े से छना चूर्ण भी कुक्कुर खांसी में देते हैं। मात्रा वयानुसार १ से २ रत्ती है। अनुपान मधु, दिन में दो तीन दफे थोड़ा–थोड़ा चटाना देना चाहिए। इसका स्वाद थोड़ा तेज होता है। अतः मधु कुछ ज्यादा ही चटाना चाहिए।

रोकथाम के लिये शीत सम्पर्क न होने देना, सामने से हवा न लगे ऐसी सावधानी रखना, ठंडे खाद्य एवं पेय टालना चाहिए। आक्रांत होने पर अन्य बच्चों को रोगी संपर्क में न आने देना और उसके सोने की व्यवस्था यथासम्भव अलग करना चाहिए। टीका उपलब्ध हो तो देना चाहिये।

उपरोक्त उपचार घरेलू हैं जो उपद्रव रहित हैं और बहुत बलहानि न होने पर इनका प्रयोग करना चाहिए। इनसे दो–तीन दिनों में लाभ न हो तो चिकित्सक की सलाह अवश्य लेनी चाहिये।

रोगी बच्चों को थोड़ा–थोड़ा आहार अनेक बार देना उपकारक होता है। ताजा, कुछ–कुछ गरम, नमकीन आहार देना चाहिए। एकदम नरम चावल, खिचड़ी, पेया, विलेपी, कांजी या खीर जैसे पदार्थ, मूंग का पानी बगैरा दे सकते हैं। पीने के लिये गुनगुना पानी दें। सवेरे शाम छाती–गले और पीठ पर थोड़ा सेंक करें, धुएं से बचाएं और स्नान गरम पानी से कराएं।

फेफड़े का क्षय

फेफड़े के क्षय का रोगी धीरे–धीरे सफेद पड़ कर, खाँसता, खखारता, खून उगलता हुआ इस संसार से कूच कर जाता है। यह रोग इतना विध्वंसकारी है कि एक ओर रोगी को जीविका उपार्जन में असमर्थ कर देता है और दूसरी ओर उसे जीवनरक्षा के लिए पौष्टिक आहार और महँगी दवाएं दीर्घकाल तक खाने के लिए बाध्य भी करता है। इस प्रकार रोगी परिवार, समाज तथा राष्ट्र के लिए भार स्वरूप बन जाता है।

यदि फेफड़े के टी.बी. का निदान और उपचार प्रारंभिक अवस्था में ही न हो तो अन्य उपद्रव जैसे प्लूरिसी, मेनिनजाइटिस आदि हो सकते हैं।

यह एक औपसर्गिक रोग है। क्षय के जीवाणु शरीर में प्रवेश करते हैं। ये शरीर के तंतुओं पर आक्रमण कर एक चकत्ता बना देते हैं और सभी तंतुओं को खोखला कर देते हैं। इससे रक्त की नलियां फट जाती हैं जिससे मुंह से खून आने लगता है।

शरीर में जीवाणुओं का प्रवेश होने पर शरीर के कोष जीवाणु के चारों ओर दीवार बना देते हैं ताकि जीवाणु रोग को फैला न सके। इस प्रकार की रचना को ट्यूबरकल कहते हैं। यदि जीवाणु दीवारों के अंदर कैद होने पर भी नहीं मरते तो इसे बंदीकृत क्षति कहते हैं और यदि जीवाणु मर जाते हैं, और औपसर्गिक भाग में रेशों का निर्माण हो जाता है और उस पर कैल्शियम जमा हो जाती है तो यह स्थान भरा हुआ घाव कहलाता है। पर यदि जीवाणु दीवारों के अंदर कैद नहीं रहते और बढ़ने लगते हैं तो इसे सक्रिय क्षति कहते हैं और यह विक्षत स्थान उपसर्ग का एक केंद्र बन जाता है।

प्रारंभिक अवस्था में कोई लक्षण नहीं होते। क्षुधा का अभाव, शरीर के भार का घटना, हल्का बुखार विशेषकर तीसरे पहर में, थकावट, बार–बार सर्दी–जुकाम होना, कभी–कभी सीने व गले में दर्द आदि इस रोग के सूचक हैं।

यह रोग सभी उम्र में हो सकता है पर नवजात शिशु को यह रोग अतिशीघ्र पकड़ लेता है यदि उसकी मां को यह रोग हो। ५ वर्ष के आयुवर्ग में यह रोग बहुत कम होता है। उम्र के बढ़ने के साथ–साथ रोग की संभावना बढ़ती है और सबसे अधिक रोगी ३०–३५ वर्ष की उम्र में पाये जाते हैं।

इसके जीवाणु इतने विकट होते हैं कि उन्हें नष्ट करना बहुत कठिन होता है। थूक सूखने के पश्चात् ये उसमें ६ माह तक जीवित रह सकते हैं। जल या मक्खन में तो महीनों रह सकते हैं और दूध में तो उस समय तक जीवित रहते हैं जब तक कि दूध पीने योग्य रहता है। यही कारण है कि बीमार मनुष्य की थूक एवं क्षय द्वारा पीड़ित गाय का दूध रोग के प्रसार के अति उत्तम और अचूक साधन हैं।

धनवानों की अपेक्षा निर्धनों को यह रोग अधिक होता है क्योंकि निर्धन लोग अपने आहार में पौष्टिक एवं स्वास्थ्यवर्धक खाद्य ले नहीं पाते। उन्हें उचित मात्रा में प्रोटीन, वसा, विटैमिन, हरी साग–भाजी व फल नहीं मिल पाते और इस कारण उनकी रोग–प्रतिरोधक शक्ति बहुत कम रहती है।

इस रोग की सबसे सफल चिकित्सा आधुनिक प्रणाली से ही संभव है जिसमें विश्वसनीय औषधोपचार के अतिरिक्त शल्यक्रिया द्वारा क्षतिग्रस्त ऊतकों को निकाल देना भी संभव होता है।

क्षय रोग अब लाइलाज नहीं हैं। जब भी रोग के लक्षण प्रकट हों तुरंत निदान करवाना चाहिए। खांसी लगातार रहने पर अपने आप कोई दवा न खाएं क्योंकि ऐसा करने से लक्षण दब जाते हैं, पर रोग नहीं दबता।

रोग के लक्षण समाप्त होने पर उपचार बंद न करें अन्यथा बीमारी फिर हो सकती है। रोगी उन नियमों का पालन अवश्य करे जिनसे बीमारी न फैले।

रोगी की नाक से निकलने वाले स्राव, थूक, मल–मूत्र आदि से जीवाणु निकलते हैं। इनको नष्ट कर देना चाहिए।

रोगी को चाहिए कि वह अपनी थूक न निगले और न फर्श पर फैलाए क्योंकि सूख जाने पर भी जीवाणु महीनों थूक में जीवित रहते हैं और हवा के एक झोंके के साथ किसी की भी सांस में प्रवेश कर सकते हैं।

छींकते व खांसते समय मुंह पर रूमाल लगाना आवश्यक है ताकि मुंह से लार निकल कर बाहर न गिरे और लार के कण हवा से किसी व्यक्ति के शरीर में न प्रवेश कर जायें।

फेफड़े के क्षय के कारण

फेफड़े के क्षय को राजयक्ष्मा भी कहते हैं। यह प्राणवह स्रोतस की लंबी और कमजोर कर देने वाली बीमारी है जिसमें खांसी, सीने में दर्द, शोष, खून थूकना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

रोगोत्पादक कारण

सुश्रुत के अनुसार यह एक खानदानी बीमारी है। वातज और वात कफज प्रकृति के व्यक्ति जिनकी रोग–प्रतिरोधक शक्ति न्यूनतम होती है इस रोग से शीघ्र आक्रांत हो जाते है।

पहाड़ों पर रहने वाले लोग जब मैदानों में आकर रहने लगते हैं तो इस बीमारी से ग्रस्त हो सकते हैं।

मिस्त्री, खदानों में काम करनेवाले मज़दूर, छुरी पर सान धरनेवाले और सब्जी बेचनेवाले आसानी से इस रोग के शिकार होते हैं।

अस्पताल के कर्मचारिवृंद और सामाजिक कार्यकर्ता जिनका संपर्क रोग के जीवाणुओं से प्रायः होता रहता है, इस रोग के प्रति अत्यधिक प्रवृत्त रहते हैं।

अत्यधिक पढ़ने और बोलनेवाले, अधिक यात्रा करनेवाले और बोझा ढोनेवाले इस रोग के आसान शिकार होते हैं।

धूम्रपान और मदिरापान रोग के कारण हैं।

रोग प्रतिरोधक शक्ति में कमी उत्पन्न करनेवाली कार्टिकोस्टेरायड दवाओं और एड्रिनल हारमोनों को लेने वाले व्यक्तियों का सामान्य प्रतिरोध कम हो जाता है और वे रोगग्रस्त हो जाते हैं।

आयुर्वेद के अनुसार चिंता, दुःख भय, क्रोध और दुर्भावना इस रोग के कारण हैं। प्रेम में विफल हो जानेवालों में इस रोग की अधिकता सिद्ध हो चुकी है।

क्षय और एड्स का परस्परावलंबन ?

विगत कतिपय वर्षो से विश्व में क्षय रोग का फैलाव फिर से बढ़ जाने से विश्व स्वास्थ्य संघटन चिंतित हो उठा है। विकासशील देशों में जहां क्षय और एड्स का परास्परावलंबन (जांबिया में क्षय के दो–तिहाई मरीज एच आइ वी पॉजिटिव पाये गये हैं) विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। क्षय के रोगियों की संख्या की क्रमशः वृद्धि के दृष्टिगत विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जागतिक आपात स्थिति की घोषण कर दी है।

लेकिन यह समस्या विकासशील देशों तक ही सीमित भी नहीं है। अमरीका के कुछ शहरों में ऐसे मरीजों की संख्या में चिंताजनक वृद्धि हुई है जिन पर कई ऐंटीबायोटिकों तक का कोई प्रभाव नहीं होता।

१९८७ ई. से ब्रिटेन में भी क्षय के रोगी बढ़े है और १९८७ में ८ प्रतिशत मरीजों पर दवाएं बेअसर रहती थीं तो १९९१ में १४ प्रतिशत मरीजों पर दवाएं बेअसर साबित हुई हैं।

पृ २० का शेष

- नेत्र में रंजक द्रव्य रोद्राप्सिना रेटीन स्तर के राड कोषों में रहता है और प्रोटीन से मिश्रित रहता है। प्रकाश की किरणों से यह रंजक द्रव्य आप्सिन प्रोटीन एवं रिटेनी रंजक में परिवर्तित होता है। बाद में यह रंजक पुनः प्रोटीन से मिलकर रोडोप्सिन निर्मित करता है। विटामिन ए की कमी से इस रंजक द्रव्य का पुननिर्माण नहीं हो पाता इस कारण मनुष्य रात्रि में नहीं देख पाता। इसे रतौंधी कहते हैं और अधिकतर बालकों में कुपोषण के परिणाम स्वरूप विटामिन ए की कमी से होती है।
- मनुष्य जब प्रकाश से अंधकार में आता है तो कुछ समय बाद वह अंधकार में भी देखने लगता है। इस विटामिन की कमी से उसकी अंधकार में देखने की शक्ति कम होने से वह देख नहीं पाता। प्रकाश से अंधकार में आने के उपरांत देखने की क्षमता के आधार पर इस विटामिन की कमी का अनुमान लगाया जाता है।
- इसकी कमी से अश्रुग्रन्थियों का अपचय होने लगता है।
- इसकी कमी से नेत्र में रेटीना का अपचय होने लगता है।
- इसकी कमी से नेत्र लाल, नेत्र की कला शुष्क एवं कान्ति रहित हो जाती है। इसे जीरोफ्थैलमिया कहते हैं।
- इस विटामिन की कमी से त्वचा मोटी, रूखी एवं कड़ी हो जाती है और तैल ग्रन्थियों तथा स्वेद ग्रन्थियों में अपचय प्रारंभ हो जाता है।
- पाक नाड़ी की ग्रन्थियों एवं इपीथीलियल कला के अपचित होने के कारण पाचन विकृत हो जाता है।
- श्वसन संस्थान की श्लेष्मल कला इस विटामिन की कमी से अपचित होने लगती है जिससे फेफड़ों के विभिन्न रोग एवं क्षय रोग होने की आशंका रहती है। इसी प्रकार इस विटामिन की कमी से शरीर के अन्य स्थानों की श्लेष्मल कला विकृत होकर उन स्थानों पर जीवाणुओं का उपसर्ग सरल हो जाता है। इस कारण इस विटामिन को एन्टी इन्फेक्टिव विटामिन भी कहते हैं।
- तत्रिका संस्थान विशेषकर अभिवाही पथ का अपचय इसकी कमी से होने लगता है।
- इसकी कमी से अस्थियों में विशेषकर कशेरूक एवं सिर की अस्थियों में अध्यस्थिर (हड्डी की असामान्य वृद्धि) निर्मित होने लगती है।
- इसकी कमी से प्रजनन संस्थान में भी विकृति होती है। चूहों में इसकी कमी से प्रसव विकृत हो जाता है। इस प्रकार की विकृति मनुष्यों में नहीं देखी जाती।

आवश्यकता – स्वस्थ मनुष्य को विटामिन ए की प्रतिदिन ५००० अन्तर्राष्ट्रीय मात्रक (इंटरनेशनल यूनिट) में आवश्यकता होती है। बालकों में, गर्भवती माताओं एवं प्रसूता माताओं को इसकी मात्रा कुछ अधिक देना चाहिए। विटामिन ए की पर्याप्त मात्रा पाने के लिये व्यक्ति के आहार में दूध, मक्खन, दही, अंडा, हरे शाक सब्जियों एवं फलों की पर्याप्त मात्रा होना चाहिए।

सावधानियां – इस विटामिन की अधिक मात्रा सेवन से, भ्रम, चक्कर, सिर दर्द, वमन एवं त्वचा की पपड़ी निकलना आदि लक्षण देखे गये हैं। परीक्षणों से चूहों में रक्तस्राव प्रवृत्ति एवं विटामिन के की विकृतिजन्य लक्षण पाये जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि इस विटामिन के अधिक्य से आन्त्र से विटामिन के निर्माण एवं शोषण क्षमता कम हो जाती है। इन लक्षणों को रोकने के लिये इस विटामिन की गोलियों आदि को न लेकर इसकी कमी में इससे भरपूर प्राकृतिक खाद्य पदार्थो को ही स्वाभविक रूप में प्रयोग करना चाहिये।

क्षय के रोगी न घबड़ायें

डा. राजेन्द्र प्रसाद, लखनऊ

आज भी जबकि क्षय रोग के उत्पादक कारण की खोज हुए सौ साल से अधिक और उसके उपचार के अचूक तरीके की खोज के पचास साल बीत चुके हैं, भारत में क्षय रोग एक प्रमुख स्वास्थ्य समस्या बना हुआ है।

दुनिया में हर साल लगभग दस करोड़ व्यक्ति क्षय से संक्रमित होते हैं। इनमें से दो करोड़ व्यक्ति हर साल सक्रिय क्षय से ग्रस्त होते हैं। तीस लाख व्यक्ति मर जाते हैं जिनमें से २० लाख एशियाई होते हैं। भारत में १ करोड़ ४० लाख लोग इस रोग से ग्रस्त हैं जिनमें से ३५ लाख रोगी संक्रामक क्षय से पीड़ित हैं। भारत में हर साल ५ लाख लोग इस रोग से मर जाते हैं। यह रोग मुख्य रूप से वयस्कों को प्रायः उस उम्र में होता है जब वे कार्यक्षमता के शिखर पर होते हैं।

यह रोग स्त्री–पुरुष दोनों को किसी भी उम्र में हो सकता है। शहरों में और गांवों में इसकी बराबर संभावना होती है। गरीबी, अज्ञान, जनसंकुलता, सफाई की कमी, कुपोषण और बार–बार गर्भधारण क्षय रोग के परोक्ष कारण बनते हैं।

ज्वर, थकान, रात में पसीना आना, भूख की कमी और स्त्रियों में आर्तव का न होना इस रोग के लक्षण हैं। खांसी के साथ तनिक सा बलगम, खून थूकना और सीने में दर्द प्रायः सभी रोगियों में पाया जाता है। क्षय रोग में शैया विश्राम और पोषाहार की वृद्धि से कोई लाभ नहीं होता। कठिन परिस्थितियों में रोगी को अस्पताल में भर्ती करना जरूरी हो जाता है। इलाज दो वर्ष तक चल सकता है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि क्षय रोग शत प्रतिशत अच्छा हो जाता है बशर्ते चिकित्सक अच्छा इलाज करें और रोगी उनके द्वारा बतायी गयी औषधियों का सेवन नियमित रूप से निर्धारित समय तक करते रहें।

भारत में क्षयरोग का आतंक

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार भारत में प्रतिदिन ७२० व्यक्ति क्षय रोग से मरते हैं। यहां मात्र १० से २५ प्रतिशत मरीजों का उपचार हो पाता है और शेष रोगी स्वस्थ समाज में घुलमिल कर रहते हैं और रोग को फैलाते हैं। ये लोग प्रायः घरेलू नौकर, आया, मजदूर, दाई और वेटरों के रूप में कार्य करते हैं।

छोटे बच्चों की स्थिति और भी दयनीय है। बच्चों में प्राथमिक काम्प्लेक्स समाज के गरीब और धनाढ्य वर्गो में समान रूप से फैल गया है। नौकरी करनेवाली महिलाएं अपने बच्चों को तपेदिक से ग्रस्त आयाओं की गोद में डालकर निश्चित हो जाती हैं। ऐसे बच्चों का भविष्य शोचनीय है जिनके अभिभावकों के पास उनके लिए समय ही नहीं है।

क्षय रोग का मूल कारण माइकोबेक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस नामक जीवाणु है। सामान्यतः यह जीवाणु खांसते हुए क्षय रोगी के मुंह से निकल कर स्वस्थ व्यक्ति की सांसों के साथ उसके शरीर में चला जाता है। स्ट्रेप्टोमाइसिन इंजेक्शन के आविष्कार के बाद यह रोग सुसाध्य हो गया। बी.सी.जी. के टीके के आविष्कार से इस रोग के उन्मूलन की आशा हो चली। आज हम पुनः इस बीमारी के खतरे को झेल रहे हैं।

इस देश में फेफड़ों के तपेदिक ने सबसे ज्यादा तबाही मचा रखी है। बचपन में यह प्राथमिक काम्प्लेक्स नाम से जानी जाती है। यदि इसका ठीक से उपचार न किया गया तो फिर फेफड़ों की तपेदिक का रूप ले लेती है। इसके फलस्वरूप फेफड़ों में सड़न, सिकुड़न, फोड़े हो जाते हैं और फेफड़ा कभी–कभी फट भी जाता है।

खांसी के साथ खून आना तपेदिक का एक लक्षण है। प्रायः लोग खांसी, सीने का दर्द, बुखार आदि का इलाज कराने चिकित्सक के पास नहीं जाते।

अत्यंत शोचनीय स्थिति में ही वे चिकित्सक के पास पहुंचते हैं। २५ से ३० प्रतिशत रोगी अपनी थूक से वातावरण में क्षय के कीटाणुओं को फैलाते हैं।

आंतों की तपेदिक दूषित दूध पीने से हो जाया करती है। कब्ज, बार–बार दस्त की शिकायत, पेट में गैस भरना, पेट फूलना, पेट में हवा के गोले उठना आदि इसके लक्षण हैं। इसका ठीक उपचार न कराने से आंतों में रूकावट हो सकती है, आंतें सिकुड़ सकती हैं, आंतों में छेद हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में शल्य–चिकित्सा द्वारा ही रोगी का उपचार संभव होता है।

तमक श्वास या दमा

डा. राजेन्द्र प्रसाद, लखनऊ

तमक श्वास फेफड़ों की बीमारी है जिसमें रोगी को बार–बार श्वास–हीनता के दौरे आते हैं। भारत की लगभग दस प्रतिशत आबादी इस बीमारी से ग्रस्त है, ऐसा अनुमान किया जाता है कि।

बचपन से लेकर वयस्क जीवन तक यह किसी भी उम्र में हो सकता है। बचपन की दमा प्रत्यूर्जता (एलर्जी) से उत्पन्न होती है। दमे की उत्पत्ति के लिए ऐलर्जी का कारण पराग कण, घर की धूल, बीजाणु, जानवरों की रूसी, आहार, पेय आदि कुछ भी हो सकता है। कभी–कभी बार–बार होने वाले फेफड़ों के संक्रमण, वायु प्रदूषण, धूम्रपान या भावात्मक कारणों से भी दमे की उत्पत्ति के लिए आधार मिल जाता है।

ऐलर्जी से उत्पन्न दमे में सर्दी और छींक प्रायः बनी रहती है। प्रायः दमे का हमला रात में या तड़के सवेरे होता है। बाद में पुराना हो जाने पर कभी भी हो सकता है। ऐलर्जी वाला दमा हर साल प्रायः उसी मौसम में होता है। दमे के दौरों में रोगी को खांसी और घर्र–घर्र के साथ अचानक सांस उखड़ने की शिकायत होती है।

चिकित्सा की दृष्टि से दमा अच्छा होने वाला रोग नहीं है अपितु याप्य है। औषधों से दमे के गंभीर आक्रमणों को रोका जा सकता है और लक्षणों में राहत दिलायी जा सकती है। हल्के से लेकर औसत दर्जे की दमा पर सूंघनेवाली और खानेवाली दवाएं देते हैं जबकि गंभीर किस्म की दमा में अस्पताल में भर्ती करके इंजेक्शन और आक्सीजन देना पड़ता है। चिकित्सा की शुरुआत प्रायः कश लेने वाली दवाओं से की जाती है, लेकिन उसका प्रभाव न होने पर या रोगी कश लेने में अक्षम हो तो खाने की दवाएं दी जाती हैं। गोलियों के मुकाबले कश लेने वाली दवाओं को तरजीह दी जाती है क्योंकि ये हानिकारक पार्श्व प्रभाव कम करती हैं और इन्हें बहुत समय तक प्रयोग किया जा सकता है।

दवाओं में श्वसनी विस्फारक और स्टेरायड प्रमुख हैं, जो इंजेक्शन, गोली या कश लेनेवाली दवाओं के रूप में मिलते हैं।

दमे में संवेदना को कम करने का प्रभाव देखा गया है जो ऐलर्जी से उत्पन्न दमे में लाभदायक होता है। यह तभी लाभ करता है जब ऐलर्जी का अचूक निदान किया गया हो।

यद्यपि तमक श्वास के रोगी जीवन–मरण के बीच झूलने जैसी स्थितियों को प्राप्त हो जाते हैं लेकिन यदि वे चिकित्सक के परामर्श का अक्षरशः पालन करें तो सामान्य जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

दमे की चुंबकीय चिकित्सा

चुंबकीय चिकित्सा में रोग ग्रस्त अंग को चुंबक के दोनों ध्रुवों के संपर्क में लाया जाता है। इससे उक्त अंग में जो भी हानिकारक तत्व होते हैं वे तुरंत या धीरे–धीरे हटने लगते हैं। चुंबक की एक बेल्ट का प्रयोग मरीजों पर किया जाता है।

दमे के रोगी की श्वास नली तथा उसके समीप के भागों से सूजन अकड़न, तनाव हटाने, हानिकारक, विजातीय, अवांछनीय तत्व, कीटाणु या बलगम का जमाव दूर करने के लिए मरीज के गले, रीढ़ की हड्डी तथा छाती पर चुंबक के उत्तरी ध्रुव का स्पर्श मरीज के दायें तरफ ऊपर की ओर तथा दक्षिणी ध्रुव का स्पर्श बाई तरफ नीचे कराया जाता है। यह प्रयोग दिन में तीन बार आधे घंटे तक किया जाता है। पहली बार सवेरे नहाने से एक घंटा पहले या नहाने के तुरंत बाद, दूसरी बार दोपहर में २ से ४ बजे के बीच और तीसरी बार रात में सोने से पहले। दमे की विषमता बढ़ी होने पर चुंबकीय बेल्ट को गले या पेट पर बांध देने से रोगी चैन की नींद सो पाता है। चुंबक प्रयोग से एक घंटा पहले से एक घंटे बाद तक रोगी को ठंडी चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए।

इस प्रयोग के साथ ही रोगी को चुंबकित जल भी पिलाया जाना चाहिए। चुंबकित पानी बनाने के लिए पहले पानी को उबाल कर ठंडा करें और किसी रंगहीन कांच की बोतल में भर कर कार्क लगा दें। फिर इसे चुंबक के उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव पर बारी–बारी से १२ से २४ घंटे तक रखें। इससे जल चुंबकित हो जायगा। यह जल सर्दी, खांसी, जुकाम, पेट दर्द, उदर कृमि, चर्मरोग, पेट की गैस, तथा समस्त मूत्र रोगों का निवारक है दमे के रोगी को घंटे–घंटे पर १५० मि.ली. चुंबकित जल पिलाते रहना चाहिए।

आहार विहार

- हल्का एवं तेल–मसाला रहित खाद्य ही लें। रात का भोजन सोने से कम से कम तीन घंटे पूर्व करें।
- उड़द, राजमा, फूलगोभी, आलू, चावल तथा तली व गरम चीजें न लें।
- ताजा साग–सब्जी लें, फ्रिज में रखी चीजों का सेवन न करें।
- सवेरे, दोपहर और रात में एक चम्मच आंवला चूर्ण गरम पानी के साथ लें।
- उठते, बैठते तथा सोते–समय रीढ़ की हड्डी सीधी रखें।
- ताजा हवा में लंबी–लंबी सासें लें।
- हलका व्यायाम करें।
- धुएं, गंदी हवा तथा दूषित वातावरण से बचें।

दमा रोग की अनुभूत चिकित्सा

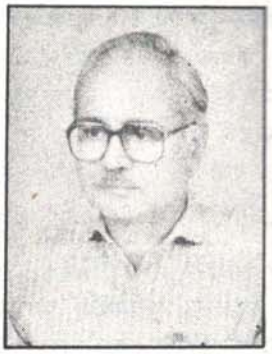

वैद्य ब्रजबिहारी मिश्र, लखनऊ

जन साधारण में यह गलत धारणा बन गई है कि "दमा दम के साथ जाता है, वह ठीक नहीं होता।" आयुर्वेद के अनुसार यह रोग कृच्छ साध्य अवश्य है, किन्तु असाध्य नहीं। सम्यक चिकित्सा एवं मथ्यापथ्य के नियमों का पालन करने वाले रोगी दमारोग से अच्छे होते देखे गए है। दमा को आयुर्वेद में तमकश्वास एवं एलौपैथी में अस्थमा कहते हैं। यह पाचन संस्थानगत विकृति के कारण होता है जिसमें कफ और वात की प्रधानता होती है। हिचकी, खांसी, जुकाम, तुण्डिकेरी (टान्सिलाइटिस) निमोनिया आदि श्वसन तंत्र के रोगों में दमा (श्वासरोग) एक प्रमुख रोग माना गया है।

श्वसन तंत्र के रोग प्रायः विदाही अर्थात् जलन पैदा करने वाले यथा मरिच, गुरु (भारी) यथा उड़द की दाल, कब्ज पैदा करने वाले पदार्थ यथा शूकर मांस रूक्ष यथा चना तथा अभिष्यंदि (रसवाही स्रातों को अवरूद्ध करने वाले जैसे दही, दूध, मछली) पदार्थो के अत्यधिक सेवन करने से, शीतल जल के पीने, शीत भोजन करने तथा शीतल (नमीवाले) स्थान में रहने से, धूल, धुवाँ, लू, तीव्र वायु, अधिक व्यायाम, शक्ति से अधिक कार्य करने, अधिक बोझ उठाने से, पैदल यात्रा अधिक करने से, वेगों के रोकने से एवं उपवास व्रत आदि अधिक करने से मनुष्यों को श्वास, कास, हिक्का आदि हो जाते हैं।

आयुर्वेद में क्षुद्र, तमक, छिन्न महान एवं ऊर्ध्व भेद से श्वास रोग पाँच प्रकार का बताया गया है। इनमें क्षुद्र एवं तमक (दमा) श्वास चिकित्सा द्वारा साध्य है जबकि छिन्न, महान एवं ऊर्ध्वश्वास असाध्य श्रेणी के रोग हैं। आयुर्वेद के अनुसार कफ की प्रधानता से युक्त वायु जब प्राणवाही स्रोतों में अवरोध उत्पन्न करके सर्वत्र घूमता है तो श्वास रोग की उत्पत्ति होती है। श्वास प्रश्वास की क्रिया फुफ्फुस के द्वारा सम्पन्न होती है अतः श्वास रोग में विकृति का प्रधान केन्द्र भी फुफ्फुस ही रहता है। हृदय एवं वृक्कजन्य भी श्वास होते हैं किन्तु अन्ततोगत्वा वह भी फुफ्फुसीय ही हो जाते हैं।

दमे की उत्पत्ति

आचार्य चरक के अनुसार विरूद्धगति को प्राप्त हुआ वायु प्राणवह स्रोतों में पहुंच कर ग्रीवा एवं शिर को जकड़ता हुआ कफ को और भी उदीर्ण करके पीनस (जुकाम) रोग को उत्पन्न कर देता है। इस कफ से अवरूद्ध हुआ वायु घुर्घुर शब्द से युक्त प्राणों के आश्रय हृदय को कष्ट देने वाले एवं अत्यन्त तीव्र वेगों से युक्त तमक श्वास को उत्पन्न करता है।

रोग के लक्षण

आचार्य चरक के अनुसार दमा से पीड़ित रोगी अपने को अंधकार में प्रविष्ट हुआ मानता है। (उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा जाता है)। वह प्यास से व्याकुल एवं निश्चेष्ट हो जाता है। बार बार खांसने से मूर्च्छित सा हो जाता है। खांसते खांसते जब तक कफ न निकल जाये उसे बैचैनी रहती है, किन्तु उसके निकल जाने पर कुछ क्षण के लिए सुख का अनुभव करता है। गला बैठ जाता है और प्रयत्न करने पर भी कठिनता से कुछ बोलने में समर्थ होता है। श्वास से पीड़ित होने के कारण लेटने पर भी निद्रा लाभ नहीं कर पाता। सोने पर उसके पार्श्व में स्थित वायु पीड़ा को उत्पन्न करता है। बैठने पर कुछ सुख का अनुभव करता है। गर्म पदार्थ उसके अनुकूल रहते हैं। नेत्रों पर सूजन रहती है या आखें चढ़ी होती है, मस्तक पसीने से तर रहता है तथा कष्ट सर्वदा बना रहता है, मुख सूखा रहता है, बार बार श्वास लेता है एवं सारे शरीर को झकझोरते हुए पुनः पुनः फूत्कारों द्वारा श्वास को छोड़ता है। मेघ, शीतल जल, शीत ऋतु तथा पूर्वीवायु एवं कफवर्धक पदार्थो के सेवन से इसकी वृद्धि होती है। यह तमक श्वास (दमा) याप्य होता है किन्तु होने पर साध्य भी होता हैं। एलोपैथी में इस अवस्था को ब्रांकियल अस्थमा कहते हैं। तमकश्वास से इसके लक्षण पूर्णतया मिलते हैं यथा प्रातःकालीन आक्रमण, पीनस सोते समय विशेष कष्ट, छाती में कफ का घुर्घुर करना श्लेष्मा के निकल जाने पर दौरे की शान्ति ये सभी लक्षण दोनों में समान है। आधुनिक दृष्टि से तमक श्वास हृद्विकार जन्य तथा फुफ्फुसीय भेद से तीन प्रकार का होता है किन्तु अन्ततोगत्वा सभी फुफ्फुसीय रूप धारण कर लेते हैं।

चिकित्सा

आचार्य चरक के अनुसार श्वास रोग में जो भी अन्नपान या औषधि कफवात को नष्ट करने वाली एवं वातानुलोमन है वह सब हितकर है।

- पुराने गुड़ १२ ग्राम में १२ ग्राम सरसों का तेल मिला कर उष्ण जल से सेवन करने से तीन सप्ताह में दमा रोग अच्छा होता है।
- हरीतली चूर्ण ३ ग्राम, शुंठी चूर्ण २ ग्राम मिला कर उष्ण जल से सेवन करने से

श्वास रोग में लाभ होता है।

- भारङ्गी चूर्ण ३ ग्राम गुड़ ३ ग्राम मिला कर प्रातः सायं गरम जल से सेवन करने से श्वास रोग अच्छा होता है।
- पोहकर मूल २४ ग्राम काकड़ा सिंधी १२ ग्राम पीपल छोटी ६ ग्राम कायफल चूर्ण ३ ग्राम सेंधा नमक १.५ ग्राम सबको कूट छान कर चूर्ण बना लें। ३ ग्राम प्रातः ३ ग्राम सायं शहद से चाटें। इससे क्षुद्र एवं तमक श्वास शीघ्र ठीक होता है।

अनुभूत योग

मेरे पितामह शतवर्षीय प्राणाचार्य पं. मन्नूलाल मिश्र वैद्य उपर्युक्त पुष्करमूलादि चूर्ण को महुवे के खोये के साथ सेवन कराते थे जिससे ४० दिनों में ही तमक श्वास रोगी अच्छे हो जाया करते थे।

महुवे का खोया बनाने की विधि : ५० ग्राम महुए को थोड़े पानी में भिगो दें जब वह फूल जावें तब उनके अन्दर का बीज निकाल दें तथा महुवों को साफ सिल में पीसें तथा एक पाव गाय के दूध में कड़ाही में डाल कर दोनों को पकाएँ जब खोवा जैसा गाढ़ा हो जावे उतार लें। इसी से दवा का सेवन करायें, बड़ा लाभ होता है।

वासादि क्वाथ – अडूसा ५० ग्राम बड़ी हर्र का छिलका ६ ग्राम मुलेठी ६ ग्राम वंवुर की अन्तर्छाल ६ ग्राम मुनक्का १० ग्राम सबको कूट कर स्टील के भगोने में ५०० मि.ली. जल डाल पकावे जब ५० मि.ली. जल शेष रहे छान कर शहद ६ ग्राम मिला कर पिलावे। इसके सेवन से श्वास, कास में शीघ्र लाभ होता है।

रस चिकित्सा – इस रोग में श्वास कुठार रस १२० मि.ग्रा. श्रृंग भस्म १२० कि. ग्रा. श्रृंगाराभ्र रस २५० कि. ग्राम. पोहकर मूल चूर्ण १ ग्राम मिला कर एक मात्रा बनावे। ऐसी तीन मात्रा सुबह दोपहर शाम शहद से लेने में शीघ्र लाभ होता है।

रससिन्दूर १२५ कि.ग्राम सोमलता चूर्ण १ ग्राम शहद के साथ सुबह शाम लेने से श्वास रोग में शीघ्र लाभ होता है।

पथ्यापथ्य

दमे के रोगी को ऐसी दवा देनी चाहिए जिससे कफ पतला होकर निकल जावे। गरम दूध, चाय, काफी, उष्णपदार्थ हित कर हैं। दमे की रोगी को ठंड से बचायें, कब्जियत न रहने दें, पेट साफ रक्खें। शीतल एवं सीलन वाले मकान में न रहने दें। दही, शीत पेय, धूल, धुवाँ एवं परिश्रम दमा के रोगी के लिए अपथ्य है। रोगी को बीड़ी सिगरेट या हुक्के में तम्बाकू का पीना छोड़ देना चाहिए।

विशेष छूट

जीवनीय सोसायटी-लोस्वापसंस द्वारा प्रकाशित

स्वास्थ्य परंपराओं पर महानिबंध

मुफ्त डाक खर्च

स्वास्थ्य की स्थानीय परंपराएं :

पृष्ठ सं. १०८ मूल्य–रु. ४०.००

भारतवर्ष के विभिन्न भागों में शताब्दियों से प्रचलित स्वास्थ्य की कुछ सशक्त परंपराओं का सर्वेक्षण व उनका मूल्यांकन इस पुस्तक में किया गया है। इन परंपराओं के वैज्ञानिक आधार और वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता एवं संभावनाओं के साथ–साथ आयुर्वेद के कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथों के संदर्भ व प्राविधिक शब्दों का विवरण भी पुस्तक के महत्व को बढ़ाता है।

पारंपरिक चिकित्सा में मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य

खण्ड–१ पृष्ठ सं. ८४, मूल्य रु. ४५.००

हमारे देश में प्रचलित स्वास्थ्य परंपराओं में संभवतः सबसे प्राचीन और समृद्ध परंपरा दाइयों की रही है जो आज भी काफी सुदृढ़ है। इस परंपरा के वर्तमान आधार पर एक देशव्यापी सर्वेक्षण लोस्वापसंस व चेतना ने अनेकों स्वैच्छिक संस्थाओं के सहयोग से किया था। इसी पर आधारित इस परंपरा में गर्भधारण एवं गर्भ की पहचान से लेकर गर्भिणी परिचर्या एवं कुछ विशिष्ट व्याधियों तथा उनके उपचार का विवरण भी इस पुस्तक में सविस्तर दिया गया है।

खण्ड–२ पृष्ठ सं. ८८, मूल्य रु. ४५.०० (प्रेस में)

उपरोक्त सर्वेक्षण पर आधारित इस पुस्तक में शिशु जन्म के पश्चात सूतिका एवं शिशु की परिचर्या के बारे में विस्तार से विवरण दिया है।

आहार एवं पोषण के आयुर्वेदीय सिद्धांत

खण्ड–१ पृष्ठ सं. १२८, मूल्य रु. ५०.०० (प्रेस में)

इस पुस्तक में आहार एवं पोषण के मूल सिद्धांतों पाचन क्रिया, अग्नि, प्रकृति एवं ऋतु के अनुसार आहार, सेवन विधि, पथ्य–अपथ्य व विशेष पदार्थो आदि का सचित्र वर्णन है। पुस्तक में निघंटुओं में उपलब्ध ज्ञान के उपयोग की विधि और उसके आधार पर पदार्थो का विभिन्न गणों में वर्गीकरण भी किया गया है।

चारों महानिबंधों का सेट एक साथ खरीदने पर विशेष छूट के साथ केवल रु. १५०.०० में उपलब्ध है। डाक खर्च मुफ्त। अपने आर्डर के साथ रु. १५०.०० का डिमांड ड्राफ्ट "जीवनीय सोसायटी, लखनऊ" के नाम से निम्न पते पर भेजें–

जीवनीय सोसायटी, ई–III/249, सेक्टर एच, अलीगंज, लखनऊ–226024

दमे की आहार चिकित्सा

वैद्य रमेश नानल, मुम्बई

रोगों की उत्पत्ति एवं निवारण में सन्तुलित आहार–विहार का काफी योगदान रहता है। यदि पथ्य आहार–विहार का नित्य सेवन किया जाय तो रोगों का इलाज एवं उनसे बचाव काफी कुछ खुद ही हो जाता है, खासकर श्वास रोग का आयुर्वेदिक ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लेख है कि पांचों प्रकार के श्वासों का मूल आमाशय है। आमाशय की क्रियाओं को सुचारु बनाए रखने के लिए संतुलित एवं पथ्य आहार का सेवन जरूरी है।

श्वास रोग में पथ्य

अनाजों में – गेहूं, जौ, सांठी चावल।
सब्जियों में – भिण्डी, चिचिंडा, बैंगन।
दालों में – चना, मूंग।
मांसाहार – मुर्गा, बकरी, खरगोश।
फलों में – अनार, अंगूर, बड़ा वाला नींबू।
दूध से बने पदार्थों में – घी, मक्खन।
सलाद – अदरक, प्याज, लहसुन, धनिया, कच्ची हल्दी, मूली, गाजर।
अन्य – दालचीनी, लौंग, बादाम, तिल, कालीमिर्च, शहद, हींग, विभिन्न प्रकार की मदिरा।

अपथ्य

अनाजों में : मक्का
सब्जियों में : सहिजन की पत्ती, लौकी।
दालों में : सेम, मटर, आलू, ज्वार।
मांसाहार : मछली, भेड़, बत्तरव, झींगा।
फलों में : पथ्य फलों के अलावा अन्य सभी फल।
दूध से बने पदार्थों में : दही, मक्खन (खट्टा)
सलाद : ककड़ी, टमाटर
अन्य : तले हुए पदार्थ, इमली, अधिक मसलेदार खाना।

श्वास रोग (दमे) में निम्न बातों पर ध्यान दें :

- हमेशा ताजा एवं गरम भोजन का सेवन करें।
- भोजन करते समय पानी न पिएं।
- भोजन करने के आधे घण्टे के पश्चात् ही पानी पियें।
- पीने के लिए गरम जल का प्रयोग करें।
- अदरक डालकर उबाला हुआ पानी पीना लाभदायक है।
- भोजन के बाद एक बड़े चम्मच शहद के साथ आधा चम्मच अदरक का रस एवं चौथाई चम्मच कालीमिर्च का चूर्ण अच्छी तरह मिलाकर नित्य सेवन करें।
- सौंफ, लौंग, इलायची, कत्था, चूना व सुपारी से युक्त पान भोजन के बाद खाना चाहिए।
- इससे पाचन के समय होने वाली कफ वृद्धि का शमन होता है।
- द्रवीभूत (पिघले हुए) कफ के संचय को कम करने के लिए जौ का प्रयोग करें जो रूखा होने के कारण स्निग्ध कफ को कम करता है।
- सूखी खांसी या श्वास रोग में केवल गेहूँ एवं चावल का प्रयोग करें।
- दालचीनी, लहसुन, अदरक, लौंग, इलायची, आदि का प्रयोग सब्जियों आदि में नित्य करें, इससे भोजन का स्वाद बढ़ता है एवं यह श्वास में लाभदायक भी है।
- पेय जल के स्थान पर द्राक्षासव का भोजन के साथ प्रयोग करें।
- मूली, धनिया, कच्ची हल्दी, प्याज आदि का सलाद के रूप में नित्य प्रयोग करें।

कुछ घरेलू इलाज

सीने में संकुचन के लिए :

- चार भिण्डी, दो लौंग व एक चम्मच अजवाइन चार कप पानी में उबालें। जब दो कप शेष रह जाए तो उसे उतारकर छान लें। ठण्डा होने पर दिन में दो–तीन बार लेना चाहिए।
- प्याज और अजवाइन को एक साथ कूचकर सीने एवं पीठ पर इससे सेंक करना चाहिए।
- दिन में तीन चार बार एक बड़ा चम्मच शहद लेना चाहिए। शहद लेने के बाद आधे घण्टे तक कुछ नहीं लें।
- अदरक, लहसुन, कालीमिर्च, पुदीना एवं धनिये की चटनी भोजन के साथ लेना लाभदायक है।
- एक लौंग, आधा चम्मच कालीमिर्च का चूर्ण, आधा चम्मच सोंठ का चूर्ण, आधा चम्मच मिश्री सबको एक साथ अच्छी तरह मिला लें तथा इसे भोजन के बाद चाट कर लें।
- सीने में संकुलन होने पर सोना नहीं चाहिए बल्कि कुर्सी पर बैठें एवं तिल के तेल में सेंधा नमक मिलाकर वक्ष एवं पृष्ठ प्रदेश पर मालिश करें, ज्यादा ठंड में न रहकर बदन को ऊनी कपड़ों से ढका रखें।
- लौंग, अजवाइन, तानपीन या युकलिप्टस के तेल की भाप लेना लाभदायक है।

गैस की शिकायत :

- अजवाइन के क्वाथ में घी मिलाकर लेना लाभदायक है।
- द्राक्षासव में हींग का चूर्ण मिलाकर लेने से तुरन्त लाभ होता है।

स्वस्थ जीवन के लिए जीवनीय पढ़िये

कफ निकालने में उपयोगी वमन कर्म

प्रोफ़ेसर(डॉ.) शिव कुमार मिश्र, लखनऊ

वमन पंचकर्म की विधियों में प्रधान कर्म है। सामान्य भाषा में भी वमन शब्द को उल्टी या उबकाई के अर्थ में प्रयोग करते हैं। यहां हम इसे पारिभाषिक अर्थो में प्रयोग कर रहे है। शोधन चिकित्सा में आयुर्वेद 'वमन' को उत्क्लिष्ट कफ के निकालने के लिए एक उपयोगी विधि के रूप में स्वीकार करता है। आयुर्वेदीय वाङमय में तमक श्वास के संदर्भ में व्यावहारिक रूप से 'वमन' का प्रयोग बहुत प्रचलित है। इसके द्वारा श्वास नलिकाओं से कफ के मल को निकालने में बहुत मदद मिलती है। जिससे श्वासोच्छ्वास की क्रिया में रक्त को आवसीजन युक्त करने में मदद मिलती है तथा रोगी को तमक श्वास के लक्षणों से राहत भी मिलती है।

परिभाषा : उत्क्लिष्ट कफ को ऊर्ध्वमार्ग से जिस संशोधन क्रिया के द्वारा निकाला जाता है उसे 'वमन कर्म' कहते हैं।

विधि

आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित वमन कर्म की विधि की कुछ क्रियाऐं तो कफोत्क्लेष कराने के लिए या उसको अधिक सुगम बनाने के लिए हैं तथा कुछ 'वमन' कर्म को ही प्रतिष्ठापित करने के लिए हैं। सामान्यतया दूध पिलाकर तथा उसके पूर्व स्नेहन स्वेदन करवा कर रोगी को वमन कर्म के लिए तैयार किया जाता है। जब कभी कफोत्क्लेष हो जाता है तब ही 'वमन कर्म' कराने की विधि है तथा वमन की वेगों की संख्या के आधार पर उत्तम, मध्य एवं हीन का वर्गीकरण किया जाता है। वमन कर्म के लिए वामक द्रव्यों जैसे मदन फल इत्यादि के क्वाथ का उपयोग किया जाता है। मधुयष्टि जैसे वमनोपग द्रव्यों से निर्मित कषाय के द्वारा भी वमन संभव है।

यहां यह इंगित कर देना उचित होगा कि स्नेहन स्वेदन तथा कफोत्क्लेष के लिए उपयुक्त द्रव्यों का उपयोग तभी अपेक्षित है जब कफोत्क्लेष के लक्षण रोगी में विद्यमान न हों यदि रोगी में स्वतः कफोत्क्लेष के लक्षण विद्यमान हों जैसा कि बहुधा देखा जाता है, तो सीधे वमन कर्म कराना उचित है।

तमक श्वास के संदर्भ में चरक संहिता में वर्णित चिकित्सा सूत्र *"तमके तु विरेचनः* की व्याख्या में भी कतिपय आचार्यो एवं टीकाकारों ने "विरेचनः" शब्द से वमन एवं विरेचन दोनों को ग्रहण किया है।

सम्यग वमित के लक्षण

वमन कर्म पूर्ण होने या ठीक से वमन हो गया है अथवा नहीं यह जानने के लिए सम्यग् वमित के लक्षणों का वर्णन है। उनमें से अनुभव से देखा गया है कि केवल एक लक्षण देखना ही पर्याप्त है। यह लक्षण है "कटुकास्थता" जिसका मतलब है मुँह में कड़वापन आना। तात्पर्य यह कि चूंकि कफ के कारण 'मधुरास्थता' रह सकती है इस लिए 'कटुकास्थता– ही सम्यग् वमित का प्रधान लक्षण है।

इन शास्त्रीय विधियों में हमने अपने अनुभव के द्वारा तथा शास्त्रों के व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर कतिपय संशोधन भी किए हैं।

अपने शास्त्रीय अनुशीलन एवं अनुसंधान के आध्धर पर १९८० के दशक में हमने यह पाया कि पूर्ण शास्त्रीय विधि से एक बार के "वमनकर्म" के लिए उस समय प्रति व्यक्ति लगभग ७५ रुपये व्यय होता था जो अब लगभग १५० रूपये हो चुका है। इसलिए उसके स्थान पर साधारण उष्ण जल तथा लवण जल से भी काम लिया जा सकता है तथा कम अवधि यानी पाँच से दस बार तक इस का उपयोग करने से कोई वमन व्यापद नहीं होती है। यह विधि हमने तमक श्वास के रोगियों में पिछले बीस वर्षो से अपनी चिकित्सकीय विधि के रूप में लाभ के साथ प्रयुक्त की है।

केवल मधुयष्टि कषाय के प्रयोग के द्वारा भी वमन कर्म कराकर देखा है। यह भी एक निरापद विधि है तथा शास्त्रीय विधि का अंग भी है।

योग के षट्कर्म की विधियों में 'कुंजल' यानी पानी पीकर आकंठ पूरित होने पर उसे योगिक क्रियाओं द्वारा निकालना भी संतोषजनक है।

वस्त्रधौति क्रिया करना भी 'वमन' के

अधिकतर लाभ प्रदान करता है यद्यपि यह विधि केवल ऊर्ध्व आमाशय में उत्क्लिष्ट कफ का ही निःसरण कर पाती है।

उपयोगिता

तमक श्वास के विशिष्ट संदर्भ में तथा कफोपक्रम के रूप में वमन एक अत्यंत उपयोगी विधि है। यह अनुभव सिद्ध भी है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में भी यह माना जाता है कि 'वामक' द्रव्यों का कम मात्रा में प्रयोग करने से कफ का निःसारण (एक्सपेक्टोरेशन) होता है।

वमन व्यापद बचने के उपाय

अधिक वमन करने से शरीर में कुछ विकृतियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। उन्हीं के उत्पन्न न होने देने तथा उपयोगी अंश को प्रतिष्ठापित करने हेतु ही शास्त्रोक्त विधि अभीष्ट है। किंतु जन सामान्य के हित में तथा वैद्य बन्धुओं के भय को दूर करने के लिए ही हमने स्वयं अपने ऊपर १० वर्ष तक १९७९ से लेकर १९८९ तक नित्य प्रातः काल लवण जल या साधारण जल से वमन कर्म करके यह अनुभव किया कि कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है। इससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।

इसके दुष्प्रभावों में कुछ पाचन संबंधी विकृतियां, शरीर में रूक्षता, रक्ताल्पता, अग्निमाद्य तथा भ्रम आदि की संभावना रहती है। इससे बचने के लिए आमलकी स्वरस अथवा आमलकी चूर्ण ५ ग्राम प्रातः सायं जल के साथ लेना चाहिए तथा हरी पत्ती वाले शाक, फल एवं सलाद वाली वस्तुओं का प्रयोग अधिक मात्रा में करना चाहिए। यदि यह संभव न हो तो आइरन एवं फॉलिक एसिड तथा विटामिन सी युक्त औषधियों का सेवन किया जा सकता है।

दमा रोगी की दिनचर्या

पद्मासन

दमा रोगी की दिनचर्या नियमित होनी चाहिये। रोगी का भोजन नियमित समय पर, कार्य के घंटे और सोने का समय निश्चित होना चाहिए तथा इसमें कोई परिवर्तन अचानक नहीं किया जाना चाहिये, अचानक परिवर्तन करने से रोगी को कष्ट बढ़ सकता है। रोगी को प्रातः उठकर नित्य कर्म से निवृत्त होकर घूमने जाना चाहिये अथवा यदि ऐसा करना संभव न हो तो घर पर ही हल्का व्यायाम करना चाहिए रोगी को धूम्रपान बिल्कुल नहीं करना चाहिये तथा धुयें से बचना चाहिए। धुआं और उसमें मोजूद छोटे छोटे कणों से श्वसन तंत्र के अन्य कई रोग भी हो सकते है। धूम्रपान के साथ साथ मदिरापन भी बहुत हानिकारक है। रोगी को अधिक भोजन करने से बचना चाहिये।

दमें के रोगी का शयन कक्ष साफ सुथरा तथा हवादार होना चाहिए इसमें केवल आवश्यकता भर का फर्नीचर होना चाहिए जिससे इसे रोज साफ किया जा सके। अन्य कोई भी अनावश्यक सामान नहीं होना चाहिये तथा इस कमरे में बाहर से शोर नहीं आना चाहिए।

दमा रोगी को किसी प्रकार के वायु प्रदूषण से दूर रहना चाहिये तथा दवायें उचित समय पर और उचित मात्रा में लेनी चाहिये। दमा रोगी को न केवल शारीरिक रूप से वरना मानसिक रूप से भी शांत और संयत रहना चाहिये उसे बहुत काम का ढ़ेर न लगा कर तनाव और चिन्ता के बचना चाहिये।

सांस लेने की क्रिया

दमे के रोगी में श्वसन नलिका की मांस पेशियां सिकुड जाती है। जिससे श्वसन नलिका का व्यास कम हो जाता है तथा इसकी श्लेष्मा सूजने के कारण यह और संकुचित हो जाती है। इस कारण सास लेने में सीटी जैसी ध्वनि सुनाई देती है। दमे के रोगी में सांस अन्दर तो आती है पर फेफड़ों की दवा ठीक से बाहर नहीं निकल पाती है। अतः दमे को रोगी को सांस बाहर निकालने पर अधिक ध्यान देना चाहिये। उसे फेफड़ों में भरी हवा बाहर निकालने कें लिये वक्ष की मांसपेशियों पर जोर देने के बजाय डायाफ्राम और पेट की मांस पेशियों का प्रयोग करना चाहिये। बिस्तर का सिरहाना थोड़ा ऊंचा रखने तथा पेट सिकोड़ कर हवा बाहर निकालने में वक्ष की मांसपेशियों को आराम मिलता है।

दमा रोगी के लिये योगासन

दमा रोगी को मकरासन, पद्मासन और शवासन लाभदायक है। इसके अतिरिक्त सूर्य नमस्कार तथा जलनेति और सूत्रनेति भी लाभदायक है।

तम्बाकू की बुराइयां

महात्मा गांधी

तम्बाकू ने मानव जीवन में कहर बरपा कर दिया है। एक बार इसके चंगुल में फंस जाने पर मनुष्य बहुत कठिनाई से इसे छोड़ पाता है। तम्बाकू का प्रयोग पूरी दुनिया में एक या दूसारे रूप में होता है। टालस्टाय ने इसे नशों में सबसे बुरा बताया है। इस महापुरूष का यह निर्णय हमारे लिये महत्वपूर्ण और ध्यान आकर्षित होने वाला होना चाहिए। अपनी युवावस्था में उन्होंने तम्बाकू और शराब का खूब प्रयोग किया था और वे दोनों के द्वारा होने वाले नुकसान से परिचित थे। मैं निश्चित रूप से तम्बाकू के प्रयोग के एक भी लाभ से परिचित नहीं हूँ। तम्बाकू पीना बहुत खर्चीली आदत हैं। मैं एक अंग्रेज को जानता हूँ जो अपनी आमदनी का पांचवा हिस्सा धुये में उड़ा देता है।

तम्बाकू पीने वाले निर्दयी हो जाते हैं और दूसरों की भावनाओं का ध्यान नहीं रखते। तम्बाकू न पीने वाले आम तौर से तम्बाकू के धुंये की गन्ध पसन्द नहीं करते, परंतु अक्सर यह देखने में आता है कि लोग रेलों और ट्राम में पड़ोसी की भावना का कोई ख्याल किया बिना तम्बाकू पीते रहते हैं। तम्बाकू पीने से लार अधिक आती है और बहुत से तम्बाकू पीने वाले बेझिझक इधर उधर थूंकते रहते है।

तम्बाकू पीने वालों के मुंह से बदबू आती रहती है। भारत में तम्बाकू पीने, सूंघने और खाने (चबाने) में प्रयोग की जाती है। कुछ लोगों का कहना है कि उन्हें तम्बाकू सूंघने से फायदा होता है और ऐसा वे वैद्यों और हकीमों की सलाह से करते हैं। मैं सोचता हूँ यह आवश्यक नहीं है। एक स्वस्थ आदमी को इसकी कभी जरूरत नहीं हो सकती।

तम्बाकू खाना तम्बाकू प्रयोग के तीनों तरीकों में सबसे गंदा है। मैंने हमेशा यह कहा है कि इससे फायदे की बात केवल कल्पना की उड़ान है और कोई कारण नहीं है कि मैं अपना विचार बदलूँ। गुजराती की एक मशहूर कहावत है कि तीनों बराबर जिम्मेदार हैं। तम्बाकू पीने वाला अपने घर की धुयें से गंदा करता है, खाने वाला कोने गंदा करता है और सूंघने वाला कपड़े गंदा करता है।

तम्बाकू खाने वालों को चाहिये कि वे अपने हाथ में एक थूकदान रखें पर अधिकांश बेशर्मी के साथ दीवाल के कोनों को गन्दा करते हैं। स्वास्थ्य से प्रेम करने वालों को इन बुरी आदतों की गुलामी से छुटकारा पा लेना चाहिये। ये तीनों बहुत गन्दी आदते हैं।

(गांधी जी की पुस्तक की 'ट्रू हेल्थ' से)

घातक तम्बाकू

भारत दुनिया का एक मुख्य तम्बाकू उत्पादक देश है और इसका स्थान केवल चीन और अमेरिका के बाद है। भारत में चार से साढ़े चार लाख हेक्टर क्षेत्र में तम्बाकू उगाई जाती है और इसका वार्षिक उत्पादन वर्ष १९८७ में ४५०–५०० मिलियन किलो ग्राम था जो पूरे विश्व उत्पादन का १३ प्रतिशत था। तम्बाकू की औसत उपज वर्ष १९६०–६१ में ७५० किलो प्रति हेक्टर थी जो वर्ष १९८७–८८ में बढ़ कर ११९९ किलो प्रति हेक्टर हो गई। तम्बाकू और उसके उत्पाद भारत वर्ष की विदेशी मुद्रा का एक महत्वपूर्ण श्रोत हैं। इनके निर्यात से वर्ष ८६–८७ में १७१.९ करोड़ की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई।

तम्बाकू में करीब ४००० रसायन होते हैं जिनमें से ४३८ से कैंसर हो सकता है। निकोटीन, टार और कार्बन मोनो आक्साइड सबसे खतरनाक हैं। अनुमानतः भारत में प्रतिवर्ष लगभग ८० लाख लोग तम्बाकू के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं, इनमें वे लोग शामिल नहीं है जो पड़ोसियों के धूम्रपान के कारण मरते हैं।

तम्बाकू चबाने और चूने के साथ मिला कर खाना मुंह के कैंसर का प्रमुख कारण है। पान मसाले से भी कैंसर जैसी स्थिति बन जाती है जिसमें रोगी अपना मुंह नहीं खोल पाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत अगले पांच वर्षो में तम्बाकू महामारी का शिकार हो सकता है, १५ वर्ष से अधिक आयु के लगभग ५० प्रतिशत पुरूष धूम्रपान करते हैं। दुनिया भर में प्रति वर्ष धूम्रपान के कारण मरने वाले लोगों में हर पांचवा भारतीय होता है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि धूम्रपान स्वास्थ्य का शत्रु और नशे की सबसे प्रचलित लत है। सिगरेट के धुयें के तत्व श्वसन तंत्र में फैली ग्रन्थियों को अधिक श्राव के लिये उत्तेजित करते हैं। रक्त में इनके शोषण के कारण शरीर के विभिन्न भागों के साथ–साथ मस्तिष्क को भी आक्सीजन पहुंचने में बाधा पड़ती हैं इसके परिणाम स्वरूप हृदय रोग होने की संभावना बढ़ जाती है। कार्बन मोनो आक्साइड के कारण रक्त वाहिनियों में कोलेस्टरोल जमने की क्रिया बढ़ जाती है। धूम्रपान फेफड़े के कैंसर से होने वाली मौतों में ९० प्रतिशत ब्रांकाइटिस से होने वाली मौतों में ७५ प्रतिशत और हृदय रोग से होने वाली मौतों में २५ प्रतिशत का जिम्मेदार है।

अब बहुत सी भारतीय महिलायें भी धूम्रपान करने लगी हैं। अनुमानतः १५ वर्ष से अधिक आयु की २५ प्रतिशत शहरी महिलायें धूम्रपान करती हैं। धूम्रपान से महिलाओं मे अन्य रोगों के साथ–साथ मासिक धर्म अनियमित भी हो सकता है। इन महिलाओं के बच्चे कम वजन के होते हैं। और उनमें श्वसन तंत्र के रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।

(बी एच ए आई द्वारा प्रकाशित 'स्टेट ऑफ इंडियाज हेल्थ' से साभार)

प्रदूषण से बढ़ते श्वसन रोग

भारत की शहरी जनता निरन्तर बढ़ते प्रदूषण के कारण विभिन्न बीमारियों की शिकार हो रही है। इनमें फेफड़े आंख, नाक और गले के रोग प्रमुखता से हो रहे हैं जैसे ब्रांकाइटिस, एंफिसीमा, साइनसाइटिस और आंखों में कंजक्टिवाइटिस आदि। ये रोग विभिन्न उद्योगों और वाहनों द्वारा फैलाये जा रहे वायु प्रदूषण के कारण हैं। इस प्रदूषण की मार इस कदर बढ़ गई है कि अब इससे ऐतिहासिक इमारतें जैसे ताजमहल भी प्रभावित हो रही हैं। केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण विभाग के अनुसार इनसे बचने का एक ही रास्ता है कि वातावरण में छोड़े जा रहे ठोस, द्रव और गैस प्रदूषकों पर नियन्त्रण रख कर प्राकृतिक वातावरण को नष्ट होने से बचाया जाय। यद्यपि बढ़ती औद्योगिक प्रगति और शहरीकरण के कारण इन पर पूरी तरह रोक लगाना सम्भव नहीं दीखता फिर भी इन प्रदूषकों की मात्रा यथा सम्भव कम से कम रखी जाय।

वायु प्रदूषण से उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त गंभीर बीमारियां जैसे फेफड़ों का कैंसर, जन्मजात विकृतियां भी हो सकती है। गंधक के प्रदूषण से मूत्र तंत्र की बीमारियां भी हो सकती हैं। इस दिशा में जन शिक्षण और जनता के सहयोग से ही उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।

वातावरण के कुछ प्रदूषण

प्रदूषक	प्रमुख मानव स्रोत	प्रभाव	टिप्पणी
कार्बन डाइआक्साइड	गरम करने, यातायात, ऊर्जा उत्पादन के लिए ईधन का जलना	लोगों पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता। कालांतर में धरती का तापमान बढ़ सकता है।	वातावरण का यह सामान्य अंग है। पेडों के लिए अत्यावश्यक है।
कार्बन मोनोक्साइड	ईधन का अधूरा जलना (जैसे–मोटर वाहन)	आक्सीजन को घटाता है। सांस के रोगियों पर विशेष प्रभाव	प्राकृतिक स्रोतों का योगदान कम। शरीर पर यातायात के धुएं से भी ज्यादा बुरा असर बीड़ी सिगरेट पीने से पड़ता है।
सल्फर डाइ आक्साइड	गंधक युक्त ईधन का जलना, जैसे कोयला व तेल	धुएं के साथ मिलकर ज्यादा खतरनाक होता है, सांस की बीमारी बढ़ाता है। दम घुटना, गले की खराश और आंखों में जलन पैदा होती है। यह वातावरण के पानी की भाप से मिलकर ऐसिड वर्षा पैदा करता हैं। अन्न की उपज घटाता है। मिट्टी और जलाशयों में ऐसिड पैदा करता हैं इमारतों को जर्जर बना देता है।	
सस्पेंडेड पार्टिक्युलेट मैटर	घरों, उद्योगों और वाहनों का धुआं।	विशेष मिश्रण के अनुसार जहरीला प्रभाव अलग–अलग होता हैं सल्फर डाइआक्साइड का प्रभाव बढ़ाता हैं धूप कम करता है,	धुंध छाती है। जंग बढाता है। रासायनिक दृष्टि से, अत्यधिक विविधता वाला पदार्थ है। इसके स्वाभाविक स्रोत हैं– धूल भरी आंधी, भूकंपीय विस्फोट, समुद्री बौछार।
नाइट्रोजन आक्साइड	मोटर वाहनों और भट्टियों में ईधन का जलना, जंगल की आग	बच्चों में सांस के तीव्र रोगों की छूत को और नजले की शिकायत बढ़ाता है। शहर की हवा में तांबई धुंध भरता है। जंग पैदा करता है।	इसके दो अंग हैं–नाइट्रोजन आक्साइड और नाइट्रोजन डाइआक्साइड।
वोलाटाइल हाइड्रोकार्बन्स	कार्बन युक्त ईधन का आंशिक जलना, औद्योगिक प्रक्रियाएं, ठोस अपशेषों का निपटाना।	दूसरे प्रदूषकों के साथ मिल कर आंख में जलन पैदा करता है। (एक्रोलीन, ऐलडी हाइड)। इथलीन पौधों के लिए खराब हैं एयरोसोल कण दृश्यमानता को घटाते हैं। दुर्गंध भी फैला सकते हैं।	
आक्सीडेंट और ओज़ोन	मोटर वाहनों से उगला जाता है। नाइट्रोजन आक्साइड और प्रतिक्रियाशील हाइड्रोकार्बन की फोटो–केमिकल प्रतिक्रिया है।	आंखों में जलन पैदा करता है और रोगियों के फेफडों को निकम्मा बनाता है। चीजों को जर्जर करता है, दृश्यमानता घटाता है। ओजोन पौधों के लिए बड़ा भयानक विषैला प्रदूषक है।	मुख्यतः यौगिक है : अलग–अलग प्रदूषक तत्वों की आपसी वातावरणीय क्रिया–प्रतिक्रियाओं से बनता है। ओजोन प्राकृतिक है और वातावरण के ऊपरी भाग का एक प्रमुख अंग है।

(तालिका गांधी शांति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित 'देश का पर्यावरण' से साभार)

श्वसन रोगों का उपचार

वैद्य बदलू राम रसिक

सरस्वती – दादी मां चरण स्पर्श।

दादी मां – प्रसन्न रहो बेटी, सब आनंद है, इधर बहुत दिन से नहीं आई थी।

सरस्वती – हां दादी मां हम अपनी नानी के गांव गये थे, वहां जाने पर देखा कि नानी बहुत बीमार हैं खांसी, श्वांस की बड़ी तकलीफ है रात दिन खांसती रहती है बहुत बलगम निकलता है। दवाई एक वैद्य जी दे गए मगर फायदा नहीं हुआ।

दादी मां – तो तुमने कोई दवा नहीं बताई, हमने पिछले वर्ष तुमको दवा बताई थी क्या वह नहीं खिलाई ?

सरस्वती – दादी मां हम अपनी कापी तो घर पर छोड़ गई थी फिर भी हमने आप की बताई हुई औषधियों को दिया जो इस प्रकार थीं।

रूसा की पत्ती १०, लटजीरा की पत्ती २०, भटकटैया की जड़ ४ अंगुल, गुरच ४ अंगुल, तुलसी की पत्ती २०, काली मिर्च २०, मुलेठी ३ माशा। सब दवाइयों को कुचलकर आधा लीटर पानी में पकाया और चौथाई रहने पर छान कर २ चम्मच शहद या चीनी डाल कर आधी दवा सवेरे और आधी शाम को पिलायां। भोजन में मूंग की दाल, अरहर की दाल, रोटी, परवल, तुरई की सब्जी दी, दूध में १ बडी पीपल डाल कर पकाया वही दूध दिया। १ महीने में नानी की स्वास खांसी सब दूर हो गई। फिर मैंने नानी को च्यवनप्राश खाने की सलाह दी, नानी बिल्कुल ठीक है। ७० वर्ष की उम्र में नानी चलती फिरती है और घर का कुछ कामकाज भी करती है।

दादी मां – यह काढ़ा, मैने सैकड़ों लोगों को बताया था और सभी ठीक हो गये थे। मैने एक भस्म बनाकर रखी है कापी निकाल कर लिखो यह भी हर प्रकार की श्वास रोगों की उत्तम दवा है।

सरस्वती – हां दादी मां बताइए इसमें क्या क्या है ?

दादी मां – लिखो बेटी – रूसा का पंचांग (अर्थात जड़, साख, पत्ता, फूल यह पंचाग हुआ) १ किलो, भटकटैया का पंचाग १ किलो, लटजीरा का पंचाग १ किलो, गुरच १ किलो, भृंगराज या भंगरा का पंचाग १ किलो सबको खुरपी से काटकर छोटा करलें और धूप में सुखायें। एक सप्ताह में सब सूख जायेगा तब इन सबको गोबर से लीपे गये मैदान में फैला दें और आग लगा दें। जब सब जल जायें तो चिमटे से आग को समेट कर उसपर एक लोहे का तसला बंद करें मगर तसला थोड़ा एक तरफ से खुला जरूर रहें। जिससे भीतर हवा जाती रहें, आधे घंटे में सब आग राख हो जाएगी। इसको ठंडा होने पर उठा लें और छान कर शीशी में भर दें। अगर यह भस्म १०० ग्राम है तो इसमें गोदन्ती भस्म ५० ग्राम, मुलेठी पिसी हुई १०० ग्राम, बहेड़ा का छिलका पिसा हुआ १०० ग्राम मिलाकर सब एक बोतल में भर लें।

इसकी एक एक ग्राम की चार मात्रा बनाकर खांसी दमा वाले रोगी को शहद में मिला कर चटाने से जादू की तरह लाभ होता है, पुरानी खांसी दमा भी दूर हो जाता है, यह मेरे एक वैद्य रिश्तेदार जो देहात में रहते हैं वह बनाकर देते हैं और हजारों रोगियों को ठीक करते हैं। यह दोनों योग बड़े अनुभूत हैं और मामूली कीमत में बन जाते हैं। अतः इन्हें बनाकर अवश्य रखना चाहिए।

सरस्वती – अच्छा दादी मां, अब श्लेषम अर्थात जुकाम खांसी पर कोई औषधि बताने की कृपा करें।

दादी मां – अच्छा लिखो बेटी – गेहूँ का चोकर एक बड़ा चम्मच, लसोढ़ा के पत्ते १०, सेन्धा नमक १ माशा सबको आधा लीटर पानी में औटायें और चौथाई रहने पर छान लें, इसकी दो खुराकें बनायें और आधा सवेरे तथा आधा शाम को पिलायें। ३ दिन में जुकाम खांसी नाक बहना, हल्का बुखार ठीक हो जायगा।

सरस्वती – दादी मां बच्चों को कुकर खांसी हो जाती है। बहुत से बच्चों को जरा सी सर्दी पड़ने पर पसुली चलने लगती है। हल्का बुखार या तेज बुखार रहता है इसकी भी दवा बता दें।

दादी मां – अच्छा लिखो बेटी यह छोटी मोटी दवाइयां घर में रखने से बड़ा लाभ होता है।

केसर असली : १ महीने से १ साल तक के बच्चों के लिए केसर के २–२ फूल

दूध में घोल कर पिला देना चाहिए कम से कम ३ बार दिन में अवश्य देना चाहिए। १ साल के बाद ३–३ केसर के फूल देना चाहिए।

जायफल : १ बढ़िया बड़ा जायफल खरीद कर घर में रख लें छोटे बच्चों की जब नाक बहने लगे, हल्की खांसी आये, हल्के दस्त आयें या हरारत मालूम दे तो जायफल को साफ पत्थर पर पानी डाल कर रगड़ लें और चम्मच में उठा लें इसे थोड़ा दूध में मिला कर पिला दें। ३–४ बार में बच्चा ठीक हो जायगा।

बारहसिंगे की सींग : इस का १ टुकड़ा बाजार से खरीद कर रख लें। जब बच्चों के पसली चलने लगे तो सींग को पत्थर पर पानी से रगड़ कर १ चम्मच में उठा लें और हल्का गरम करके बच्चे की पसली पर लेप कर दें २–३ बार ऐसा करने से बच्चे का पसली चलना बंद हो जायगा तथा खांसी भी कम हो जायगी।

काली खांसी या कुकर खांसी के लिये

लटजीरा और रूसा का पंचांग बराबर मात्रा में लेकर सुखा कर फिर आग में जला कर भस्म बना लें । इस भस्म को ५० ग्राम लें, और चौकिया सुहागा भुना हुआ ५ ग्राम, मुलेठी का चूरन ५० ग्राम, बहेड़ा के छिलके का चूर्ण ५० ग्राम लेकर सब मिला कर १ बोतल में भर लें। इसे १–१ ग्राम की मात्रा में शहद के साथ दिन रात में ४ बार चटाने से पुरानी कुकुर खांसी ठीक हो जाती है। यह अनेक बार का अनुभूत योग है।

खांसी और श्वास के लिये शरबत

रूसा की पत्ती १०० ग्राम लटजीरा की पत्ती २०० ग्राम, भृंगराज की पत्ती १०० ग्राम, मुलेठी १०० ग्राम, बहेड़ा छिलका १०० ग्राम, भटकटैया की पत्ती २०० ग्राम, तुलसी की पत्ती १०० ग्राम लें। काकरासिंगी, नागर मोथा, पीपल छोटी, हड़ का छिलका, खतमी, गावजबान, लसोढ़ा, दालचीनी, छोटी जूझा के फूल, उन्नाब, मकोय, नवसादर कूडी यह सब ५०–५० ग्राम लेकर कूट लें और १० लीटर पानी में भिगो दें। २४ घंटे भीगने के बाद आग पर चढ़ा दें चौथाई रहने पर उतार कर ठंढा होने पर छान लें। इस छने हुए काढ़े में ५ किलो चीनी डालकर पका लें जब किवाम २ तार का हो जाय तो उतार कर ठंढा होने पर छान कर बोतलों में भर दें। इस शरबत को एक–एक बड़ा चम्मच दिन रात में ४ बार पीने से हर प्रकार की खांसी तथा श्वास दूर होती हैं

श्वास के और श्वास के लिये आयुर्वेदिक दवाइयों के मिश्रण भी मशहूर हैं जैसे–

खांसी के लिये, सितोपलादि चूर्ण, लवंगादि चूर्ण और तालीसादि चूर्ण बड़ा लाभ करते हैं।

श्वांस रोग के लिए – श्वासकुठार रस, चन्द्रामृत रस बहुत लाभ करते है।

चूर्णो को ४–४ घंटे पर शहद के साथ पिलाना चाहिए श्वास कुठार तथा चन्द्रामृत रस की २–२ गोली पीस कर शहद के साथ ४ बार चाटना चाहिये। लिख लिया बेटी

सरस्वती – हां लिख लिया दादी मां अब चलती हूँ। चरण स्पर्श।

स्वयं बनाएं

सितोपलादि चूर्ण

आवश्यक द्रव्य :

दाल चीनी	५०० ग्राम
इलायची बड़ी	१ किलो
पीपल छोटी	२ किलो
वंशलोचन	४ किलो
मिश्री	४ किलो

निर्माण विधि :

इस चूर्ण का निर्माण करने में दाल चीनी, इलायची बड़ी तथा पीपल को इमाम दस्ते अथवा मशीन द्वारा चूर्ण करें तथा ४० मैश की छलनी द्वारा छान लें। चीनी अथवा मिश्री को पृथक से कूट कर ४० मैश की छलनी से छान लें। वंशलोचन को प्रथक से कूट कर ६० मैश की छलनी से छानें। फिर इन छने हुए द्रव्यों को अच्छी तरह मिला कर पैक करलें चूर्ण तैयार हो गया।

नोट – यदि चूर्ण कम मात्रा में बनाना हो तो उपरोक्त द्रव्यों की मात्रा कम ले सकते है। परन्तु द्रव्यों का परस्पर अनुपात यही रखें।

स्वयं उगाएं पत्तागोभी

शरद ऋतु के आगमन के साथ ही शाक, सब्जी, फूल इत्यादि उगने की अनुकूल परिस्थितियां आ जाती है। क्यारियों की भली–भांति निरायी–गुड़ाई करके खरपतवार निकाल कर गोबर या अन्य जैविक खाद मिट्टी में फैला देते हैं। तदुपरान्त समय आने पर इन क्यारियों में पौधों का रोपण एवं बीजों की बोवाई करते हैं। जिससे हमारे घर आंगन का वातावरण तो स्वच्छ एवं शुद्ध होता ही है। साथ में स्वास्थ्य के लिए लाभदायक वनस्पतियाँ भी समयानुसार उपलब्ध होती रहती हैं।

भाषावार नाम : **अंग्रेजी** – कैबेज, **हिन्दी** – करमकल्ला, पत्ता गोभी, **बंगला** – कोबी, **गुजराती** – कम्बोई **लैटिन** – ब्रैसिका ओलिरेसिया।

यह पूरे संसार में खाई जाने वाली प्रसिद्ध सब्जी है। इसमें विटामिन 'ए', बी, सी एवं अन्य खनिज तत्वों की उपस्थिति के कारण यह पौष्टिकता की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसका उपयोग लोग औषधीय रूप में भी करते हैं। उपयुक्त मात्रा में यह सब्जी भूख बढ़ाती है। यकृत विकार, पाचन सम्बधी रोगों तथा वजन घटाने में इसका उपयोग औषधीय रूप में किया जाता है। चरक संहिता में मूत्र विकार के उपचार में पातगोभी का वर्णन मिलता है।

रोपण का मौसम : यह रबी तथा खरीफ दोनों के मध्य के मौसम में होती है। इसके रोपण का उचित मौसम सितम्बर से अक्टूबर के बीच का होता है। मौसम एवं तापमान के आधार पर इसे तैयार होने में ६०–८० दिन लगते हैं। यह १५ डिग्री से २५ डिग्री सेन्टीग्रेड के तापक्रम पर अधिक तेजी से वृद्धि करती है।

बोआई

इसके बोआई के लिए बीजों की सर्वश्रेष्ठ किस्मे गोल्डन एँकर, संकर १०,२०,३०,४०,५०, प्राइड आफ इण्डिया आदि प्रमुख है। बोआई के लिए अच्छे किस्म के बीजों का चुनाव करना चाहिए, यदि संभव हो तो प्रामाणिक बीज जो रोगों से मुक्त हो लेना चाहिए। भूतल से १५ से. मी. ऊपर उठी हुई नर्सरी में ५ से.मी. की दूरी पर बनी पंक्तियों में बीजों की बोआई करनी चाहिए। बोआई का उचित समय सितम्बर–अक्टूबर माह होता है। बोआई के लगभग २५ दिनों के बाद जब पौधे लगभग १२ से १५ सेमी लम्बे हो जायं तो उनकी शाम के समय उखाड कर रोपाई करते है। प्रतिरोपण के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी लगभग ४५ सेमी तथा पौधों से पौधों की दूरी लगभग ३० सेंमी होनी चाहिए। प्रतिरोपण के तुरन्त बाद हल्का पानी देना चाहिए। समयानुसार बार बार सिंचाई, गोड़ाई अदि करते रहना चाहिए जिससे पौधे स्वस्थ रहें; तथा पैदावार अधिक हो। बंद जब पूर्ण रूप से तैयार हो जाए तो उसे काट कर अलग कर लेना चाहिए। तथा पौधे को क्यारियों में ही लगे रहने देना चाहिए। जिससे इनमें फल एवं बीज आ जाय और बीजों को इकट्ठा कर अगले मौसम में रोपण के लिए रख लेते हैं। बंद को छोटे छोटे टुकड़े कर सुखा और पैक कर के हर मौसम में उपयोग कर सकते है।

रोग एवं बचाव

इसके पौधों में कई प्रकार के रोग लगते है। जिसके कारण इसकी पैदावार कम हो जाती है। कभी कभी तो संपूर्ण पौधा ही नष्ट हो जाता है। कुछ रोग निम्न लिखित हैं :

डैम्पिग : सम्पूर्ण पौधा गलकर गिरने लगता है। यह मुख्यतय पाइथम कवक द्वारा होता है। परन्तु कभी कभी पानी की अधिकता या क्यारियों में पानी के रुके रहने आदि कारणों से भी होता है। यह रोग नये (कमजोर) पौधों को अधिक प्रभावित करता है।

अर्लीब्लाइट रोग – यह रोग अल्टरनेरिया नामक कवक के कारण होता है। इससे प्रभावित पौधों की पत्तियां एवं बंद खराब हो जाते हैं। पत्तियों के ऊपर काले रंग के गोल–गोल छल्ले के आकार की रचना बन जाती है। जो प्रारम्भ में तो छोटी होती है परन्तु तापक्रम के बढ़ने के साथ साथ यह पूरे पौधे की पत्तियों में फैलकर उन्हों नष्ट कर देती है।

विषाणु रोग – इसके पौधे कई तरह के विषाणु रोगों से प्रभावित हो जाते हैं। जिससे पौधों में कई तरह के लक्षण उत्पन्न होते है। जैसे पत्तियां मुडी हुई होना पत्तियों की शिराओं का पीला पड़ जाना आदि। इससे फूल एवं कफलियां भी प्रभावित होती हैं। उपरोक्त रोगों से बचने के लिए पौधों का निरीक्षण एवं उपचार बहुत आवश्यक है। इसके लिए सर्वप्रथम रोग के लक्षण उत्पन्न होते ही प्रभावित पौधों को उखाड़ कर नर्सरी के बाहर गड्ढे में दबा देना चाहिए। इसके बाद अन्य पौधों पर कवक नाशी रसायन का छिड़काव करना चाहिए बोआई से पहले नर्सरी को पूरी तरह से उपचारित कर लेना चाहिए उपचारित करने के लिए ब्रासिक्ल क्रेप्टान प्रति ग्राम तीन लीटर पानी में मिला कर प्रति हेक्टेयर नर्सरी को उपचारित करते है।

कीट रोगों में थियोडान का छिड़काव करना चाहिए। कीट नियन्त्रण के लिए नीम के अवयव निमोलीन, सल्लानीन, अजाडीरक्टीन ए–एच आदि अधिक प्रभावी जैव नियन्त्रण पद्धति है। कीटों के माध्यम से ही इन के फसलों में विषाणु रोग एक पौधे से दूसरे पौधों में फैलते हैं। इसलिए इसका नियन्त्रण बहुत आवश्यक है।

स्त्री रोगों में पथ्य सिंघाड़ा

सिंघाड़ा एक प्रकार का सस्ता और सर्वसुलभ फल है जो कि प्रायः तालाब, पोखरों आदि में उगाया जाता है। इसकी बेलें पानी की सतह पर तैरती रहती है तथा इसकी जड़ें पानी के अंदर झूलती रहती हैं। परिपक्व बेलों पर छोटे–छोटे त्रिकोणाकार फल जन्म लेते हैं जो कि सिंघाड़े के नाम से जाने जाते हैं। सिंघाड़ों पर सींगों की तरह कॉटे होते है और इसीलिए इन्हें 'श्रृंगाटक' भी कहते हैं।

इसे **असमी** में शिंगोरी, **बंगला** में पानीफल, **गुजराती** में शेंगोड़ा, **पंजाबी** में **सिंघाड़ा,** कन्नड़ में मुल्लु कोम्बी बीजा, **कोंकणी** में झिंग्ड़ी, **मलयालम** में करीमपोला, **उड़िया** में सिंगाड़ा, **तमिल** में सिंगारा कोट्टुई **तेलुगु** में कुब्याकम तथा **लैटिन** में "ट्रापा नैटन्स" कहते हैं।

सिंघाड़ा जब कच्चा होता है तब हरा होता है किन्तु जैसे–जैसे यह पकता जाता है इसके रंग में कुछ कालापन आ जाता है। इसका छिलका निकाल लेने पर अंदर से दूध जैसी सफेद गिरी निकलती है। यह गिरी ही खाई जाती है और अत्यंत स्वादिष्ट होती है। अधिकतर इसे कच्चा ही खाया जाता है क्योंकि पक जाने पर गिरी का स्वाद फीका हो जाता है। ऐसे समय इसे थोड़े से कसीस के साथ उबाला जाता है। ऐसा करने से इसका रंग बिल्कुल काला हो जाता है तथा स्वाद में पुनः एक विशिष्टता लौट आती है।

हिन्दू लोग सिंघाड़े को व्रत के समय फलाहार के रूप में ग्रहण करते हैं। शिवरात्रि के अवसर पर तो सिंघाड़े को फलाहार के रूप में ग्रहण करने का और भी अधिक महत्व है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि सिंघाड़े में हमारे शरीर के लिये आवश्यक विटामिन्स, प्रोटीन्स, शर्करा, वसा, लवण जलादि सभी पोषक तत्व विद्यमान होते हैं।

आयुर्वेदानुसार सिंघाड़ा शीतल, स्वादिष्ट, वीर्य वर्द्धक, भारी तथा पित्त विकार एवं दाह को नष्ट करने वाला होता है। ग्रामीण लोग सिंघाड़े का नाश्ता लेकर स्वास्थ्य लाभ उठाते हैं।

स्त्रियों की कई जटिल व्याधियों में सिंघाड़ा अत्यंत उपयोगी है। जिन स्त्रियों को प्रायः अधिक रक्त स्राव होता हो उन्हें सिंघाड़े का सेवन अवश्य करना चाहिये। इसके सेवन से रक्त

सिघाड़ों में कीटनाशक

राष्ट्रीय वानस्पतिक अनुसंधान संस्थान एवं औद्योगिक विष अनुसंधान संस्थान लखनऊ के सर्वेक्षण एवं अनुसंधान से पता चला है कि उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, उडीसा में लोग सिंघाड़े के प्रयोग से मुख्यतया फेफड़ों, हृदय, यकृत रोगों से प्रभावित होते हैं। जिसका मुख्य कारण सिंघाड़े में उपस्थित जहरीले पदार्थ के अवशेष "कार्बोफ्युरान" है। बी.एस. दीक्षित और वरिष्ठ वैज्ञानिक आर.बनर्जी ने इस सन्दर्भ में अपने शोध पत्र में उत्तर प्रदेश के पाँच जिलों बाराबंकी रायबरेली, लखनऊ, सीतापुर और उन्नाव में सर्वेक्षण से यह पाया गया कि सिंघाडे में "कार्बोफ्यूरान" जो कि कीटनाशक का अवशेष है विद्यमान रहता है जिसकी न्यूनतम मात्रा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा ०.५ पी.पी.एम. निर्धारित की गयी है। परन्तु बाजार में उपलब्ध सिंघाड़ों में कार्बोफ्यूरान २.६२ मिग्रा./ग्राम पाया गया।

इसका कारण सिंघाडे के पौधों को कीटों से बचाने के लिए डी.डी.टी. का छिड़काव किया जाना है। डी.डी.टी. कीटनाशक पर विश्व, स्वास्थ्य संगठन ४० वर्ष पूर्व ही प्रतिबन्ध लगा चुका है। वैज्ञानिकों के अनुसार उबले हुये सिंघाड़े में यह मात्रा कम हो जाती है। अतः उबले सिंघाड़े खाना कम हानिकारक है।

स्राव में तो कमी आती ही है साथ ही कमजोरी भी दूर होती है। इसी प्रकार सिंघाड़ा गर्भवती महिलाओं को भी बेखटके दिया जा सकता है। इसके प्रयोग से उनके शरीर का बल बना रहता है।

श्वेत प्रदर में भी सिंघाड़ा उपयोगी है। इसके लिये रोगी महिला को सिंघाड़े के आटे का हलवा अथवा रोटी खानी चाहिये। सिंघाड़े का उक्त हलवा शुद्ध घी में यथायोग्य शर्करा डालकर बनावें। इसी प्रकार सिंघाड़े की रोटी पर भी शुद्ध घी लगाकर ही खावें।

कुछ युवक अपनी स्त्रियों को पूर्ण संतुष्ट नहीं कर पाते है क्योंकि कुचेष्टाओं के परिणाम स्वरूप उनका वीर्य पतला हो जाता है जिसके कारण संभोग के समय वे शीघ्र स्खलित हो जाते हैं। ऐसे युवकों के वीर्य में शुक्राणुओं की संख्या कम होती है अथवा उनके शुक्राणु पूर्ण गतिशील नहीं होते हैं। ऐसे युवकों के लिये सिंघाड़ा रामबाण औषधि है। इसके लिये उन्हें कुछ दिनों तक नित्य सिंघाड़े के आटे के हलवे का (जिसमें कुछ बादाम की गिरियां भी मिली हों) सेवन करना चाहिये सिंघाड़े के आटे को लगभग २–२ तोला मात्र सुबह शाम फॉककर ऊपर से उबला हुआ मीठा दूध पी लेना चाहिए। इस प्रयोग से कुछ ही दिनों में उनका वीर्य पुष्ट हो जायगा।

गर्भिणी स्त्री का रक्तस्राव रोकने में भी सिंघाड़ा सक्षम है। इसके लिये दूध के साथ सिंघाड़े के आटे का हलवा बनाकर सुबह–दोपहर और सायंकाल खिलाना चाहिये।

जिन लोगो की पित्त प्रकृति हो, अथवा जो व्यक्ति अपने हाथ–पैर आदि में जलन का अनुभव करते हों अथवा जिनके शरीर पर प्रायः फुन्सियां हो जाती हों अथवा जिन्हें प्रायः मुखपाक का शिकार होना पड़ता हो – ऐसे लोगों को भोजन के दो घण्टे पश्चात् या तो कच्चे सिंघाड़े खाने चाहिये अथवा नित्य कुछ समय तक सिंघाड़े के मुरब्बे का सेवन करना चाहिये। सिंघाड़े का मुरब्बा बनाने के लिये पके हुए सिंघाड़े लेकर उनको हल्के से जल में उबाल लें। तदुपरांत इनकी गिरियों को निकालकर किसी नोकदार औजार से गोद दें और फिर इन्हें चाशनी में डालकर कम ऑच पर पकावें। जब सिंघाड़े पक जांय और चाशनी भी एक तार की चलने लगे तब नीचे उतारकर इसमें थोड़ी सी इलायची पीसकर डाल दें और ठंढा होने पर किसी कांच की बरनी में इसे संचित करके रख लें। इसमें सिंघाड़े के सारे गुण यथा रूप विद्यमान रहते हैं।

जलन में सिंघाड़े की बेल को पीसकर संबंधित स्थान पर बांधने से त्वरित लाभ होता है।

सिंघाड़े के छिलकों का अर्क टान्सिल्स में अत्यंत लाभदायक होता है। इसके लिये रोगी को इस के अर्क से गरारे करने चाहिये। इसी अर्क से गुदा प्रक्षालन करने से बच्चों के कांच निकलने की व्याधि ठीक होती है। खूनी बवासीर के रोगी भी इस अर्क से प्रक्षालन करके लाभ प्राप्त कर सकते हैं। छिलकों का अर्क बनाने के लिये सिंघाड़े के पर्याप्त छिलकों को जल में उबाला जाता है। जब जल की मात्रा आधी रह जावे तब इस जल को छान लिया जाता है यही इसका अर्क है।

नीम उत्पादों के पेटेंट को चुनौती

भारत सहित ३५ देशों के २०० संगठनों ने अमरीका के पेटेन्ट कार्यालय में एक याचिका दायर करके अमरीकी कम्पनी डब्लू.आर.ग्रेस के नीम के उत्पाद एजाडिरैक्टिन को पेटेन्ट करने के अधिकार को चुनौती दी है और इसे रद्द करने की मांग की है।

याचिका दायर करने वालों में कर्नाटक राज्य रैयत संघ के प्रो. एम. डी. नन्जुन्डास्वामी तथा फाउन्डेशन फार साइंस, टेक्नोलोजी एंड नेचुरल रिसोर्स पालिसी की डा. वन्दना शिवा शामिल हैं। इसके अतिरिक्त थर्ड वर्ड नेटवर्क के निदेशक डा. मार्टिन खोर, अमरीका के फाउन्डेशन फार इकोनोमिक ट्रेन्डस के डा. जर्मी रिफकिन, इंटरनेशनल फेडरेशन आफ आरगैनिक एग्रीकल्चर मूवमेन्टस, ब्रुसेल्स की उपाध्यक्ष लिन्डा बुलर्ड सहित डेनमार्क, फ्रांस, जापान, जर्मनी, मलेशिया, फिलीपीन, अर्जेन्टाइना, चिली, आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, कनाड़ा और अमेरिका के २०० संगठन शामिल हैं।

याचिका में कहा गया है कि पश्चिमी लिपिबद्ध ज्ञान के संकुचित दायरे के बाहर देशी जानकारी और विज्ञान सदियों से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहा है। सदियों से भारतीय किसान नीम के बीजों से तेल निकाल कर उसका कीटनाशक और औषधि के रूप में उपयोग करते रहे हैं। यद्यपि नीम से एजाडिरिक्टिन नामक तत्व निकालने की तकनीक अधिक परिष्कृत है यह भारतीय किसानों द्वारा शताब्दियों से अपनायी जा रही तकनीक का संवर्धन मात्र है और उत्पादन में छोटे मोटे परिवर्तनों का पेटेन्ट नहीं दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भारत में कृषि उत्पादों पर कभी पेटेन्ट नहीं रहा है। जर्मी रिफकिन के अनुसार नीम पेटेन्ट को चुनौती बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा तीसरी दुनिया के प्राचीन सभ्यता वाले देशों के जैविक स्रोतों पर नियन्त्रण को चुनौती है।

बहूपयोगी नारियल

नारियल एक बहूपयोगी पेड़ है जिसके लगभग सभी भागों का उपयोग किया जाता है। इसके फल और सब्जी दोनों तरह के उपयोग हैं। फल से प्राप्त तेल का उपयोग सर्वविदित है।

भाषावार नाम – **हिन्दी** – नारियल, **बंगला** – नारकेल, **संस्कृत** – नारिकेल, **गुजराती** – नालिएर, **मराठी** – नारल, **अंग्रेजी** – कोकोनट, **लैटिन** – कोकोस नूसीफ़ेरा।

नारियल भारतवर्ष के तटीय प्रदेशों, लंका, बर्मा तथा पूर्वी द्वीप समूह में पाया जाता है। इसके पेड़ ५० फीट या उससे अधिक ऊंचे होते हैं। बौनी जातियां भी पाई जाती हैं।

नारियल एक आर्थिक महत्व का फल है। हिन्दू धार्मिक संस्कारों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। नारियल दक्षिण भारत के सामाजिक आर्थिक जीवन में पूरी तरह घुल मिल गया है। इसी कारण इसे कल्पवृक्ष भी कहते हैं। वृक्ष के तने को शहतीर की तरह प्रयोग किया जा सकता है। फल के चारों ओर लगे रेशे (नारियल जटा) से डोर मैट्रेस (पावदान) चटाई आदि बनाये जा सकते हैं। यह गद्दों आदि में भरने के काम में भी आता है। तने के उपरी भाग से ताड़ी निकाली जाती है। पत्तियों के बीच की पतली सींकों से झाड़ू बनाई जाती है। पत्तियों को आपस में बुनकर छप्पर या दीवाल की तरह प्रयोग किया जा सकता है। नारियल वृक्ष के अन्य भाग जलावन की तरह प्रयोग की जा सकती हैं।

फल की गरी उत्तम भोज्य पदार्थ है और बहुत से दक्षिण भारतीय व्यंजनों में इसका प्रयोग होता है।

नारियल की गरी में मांसवर्धक द्रव्य (प्रोटीन), वसा तथा शर्करा होती है।

गरी बनने से पहले हरे नारियल में पानी होता है जिससे गरी बनती है। गरी बनने के बाद भी थोड़ा सा पानी बच जाता है। नारियल का पानी करीब–करीब दूध की तरह ही संपूर्ण आहार है। इसमें विटामिन ए,बी,सी, कैल्सियम और लौह तत्व पाया जाता है। उल्टी आदि में यह उत्तम आहार है। बच्चों के अतिसार में निर्जलीकरण को दूर करने के लिये यह उत्तम है। अधिक खून निकल जाने की स्थिति में यह अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि नारियल जल का अधिकांश रक्त के जलांश की पूर्ति करता है। नारियल का पानी सूजाक रोग में लाभदायक है। मूत्र रुकने की स्थिति में इससे मूत्र खुल कर आता है तथा जलन दूर होती है। गर्भवती महिला के लिये गर्मी में यह उत्तम शीतल पेय है। यह मां और गर्भस्थ शिशु दोनों के लिये लाभदायक है।

गरी से प्राप्त तेल घी के समान प्रयोग करने से बाजीकर और शरीर को वृद्धि प्रदान करता है। दक्षिण भारत में इसका खाद्य तेल की तरह उपयोग किया जाता है। सिर में लगाने से यह बालों की वृद्धि करके उन्हें नरम और मुलायम बनाता है। नारियल की गरी उत्तम आहार है परन्तु यह भारी होने के कारण देर में पचती है। पुरानी गरी से उदरकृमि विशेषकर कद्दूदाना नष्ट होता है। वाजीकरण के लिये गरी चीनी के साथ खाई जाती है। पके हुये ताजे नारियल का जल के साथ पकाकर निकाला हुआ तेल क्षयरोग में काडलिवर आयल के समान लाभ पहुंचाता है।

नारियल की गरी और नारियल के तेल में अधिक वसा होने के कारण यह हृदय और वाहिका तंत्र के रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के भोजन में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। परन्तु नारियल अधिक पाये जाने वाले क्षेत्रों में सामान्यतः प्रयोग किये जाने वाले भोज्य पदार्थो में परम्परानुसार लहसुन, प्याज और बहुत सी ऐसी सब्जियों का प्रयोग किया जाता है जिनके औषधीय गुण नारियल से होने वाले नुकसानों को बड़ी सीमा तक दूर कर देते हैं। भोजन का स्वाद सुधारने के साथ ही साथ लहसुन में तांबा, कैल्शियम, जस्ता, मैंगनीज, गंधक और विटामिन ए आदि पाये जाते हैं। लहसुन नसों में खून को जमने से रोकता है और आक्सीकरण को भी रोकता है। लहसुन उच्च रक्त चाप कम करने के लिये बहुत

शेष पृष्ठ ५३ पर

केला

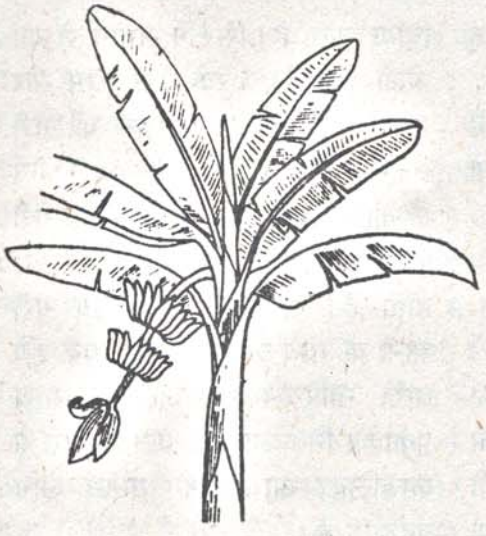

केले का वृक्ष प्रायः सभी प्रान्तों में पाया जाता है। एक बार फल लगने के बाद इसका वृक्ष स्वतः नष्ट हो जाता है। जमीन के अन्दर पाये जाने वाले भूमिगत तने (कंद) अंकुरित हो कर नये वृक्ष को जन्म देते है। भूमि के ऊपर पाये जाने वाले मोटे गोलाई लिए हुए हरे रंग के तने के सदृश जो रचना पायी जाती है वह पर्णवृन्त का रूपान्तरित भाग होता है। इसके पत्ते लम्बे मुलायम होते है। हवा के झोंकों से ये जल्दी फट जाते है। लोग इस पर भोजन भी करते है। इनके फल पकने से पूर्व हरे रंग के होते है। पकने के बाद पीले रंग के हो जाते है। सब प्रकार के केलों में बम्बई का लाल केला, कलकत्ते का चाटिम केला, चम्पक केला (पीला केला) प्रशंसा के योग्य होते है। पर्वती केला, काला केला, राजभोग, चीनिया आदि केले भी बढ़िया गिने जाते है। केले की उत्पत्ति सबसे पहले कहाँ हुई, यह अभी भी संदिग्ध है वैज्ञानिकों का विचार है कि केले का मूल जन्मस्थान भारत या दक्षिण पूर्व एशिया के द्वीपपुंज हैं। इसका उपयोग लोग प्राचीन काल से ही करते आ रहे है। इसके औषधीय गुणों का वर्णन चरक, भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में मिलता है। यह म्यूसेसी कुल का पौधा है।

भाषावार नाम

हिन्दी, बंगला, गुजराती – केला, **मराठी**–केल, **तेलुगु**–अरहि, **मलयालम**–पझम, **तमिल**–पड़म, **लैटिन**– म्यूसा सेपिएन्टम्।

रासायनिक संगठन

केले के पंचांग की राख में पोटैशियम होता है। कच्ची अवस्था में टैनिन तथा पक्के फलों में शर्करा विटामिन "सी", कुछ "बी", खनिज द्रव्य (कैलसियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस, तांबा, गंधक लोहा), पाया जाता है। पौष्टिकता की दृष्टि से इसमें २२ से २५ प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है। जो पके केले में स्टार्च, इक्षु शर्करा व द्राक्ष शर्करा के रूप में रहता है। एमाइल एसीटेट नामक द्रव्य की उपस्थिति के कारण यह पकने पर सुगन्धित हो जाता है। प्रोटीन एवं वसा की मात्रा इसमें कम होती है। इसमें विटामिन बी काम्प्लैक्स के अतिरिक्त विटामिन एच उचित मात्रा में पाया जाता है।

गुण एवं उपयोग

पका हुआ केला बल तथा कांति को बढ़ाता है। वात, कफ, रक्त पित्त को शांत करता है। प्रमेह नष्ट करता है। खाने में कसैला मधुर, वीर्य को बढ़ाने वाला है। प्रदर रोग को नष्ट करता हैं। प्यास शांत करता है। सोम रोग, मधुमेह, अतिसार, अपस्मार, अपतन्त्रक आदि रोगों की यह उत्कृष्ट औषधि है।

केले का रस : टाइफाइड बुखार के उतरने के बाद केला रोगी को पथ्य के रूप में दिया जाता है। आधा पाव पके केले के गूदे को डेढ़ पाव पानी में डालकर आंच पर धीरे धीरे पकाना चाहिए फिर इसे छान कर रोगी को देना चाहिए। इससे क्षय, जुकाम, खांसी, बुखार, अतिसार भूख की कमी आदि रोगों में लाभ होता है। संग्रहणी तथा अतिसार में केले को दही के साथ लेने पर फायदा होता है। केले में अल्बूमिन कम परिमाण में पाया जाता है। जिसके कारण यह मधुमेह (डायबिटीज) के रोगी के लिए पथ्य है।

केले के चिप्स : केले का चिप्स भी बनाया जाता हैं। इसे बनाने के लिए स्टील की चाकू से कतरे काट कर अम्लीय जल में भिगोकर ताजे पानी

से धो लेते है। फिर एक घंटे सल्फर डाई ऑक्साइड की धूनी देकर धूप में या सुखाने के अन्य उपकरणों में ६० से ६३ डिग्री सेन्टीग्रेड तापक्रम पर सुखाते हैं। फिर इसे तल कर उपयोग में लाते है। चिप्स में मुख्य पोषक तत्व प्रोटीन ५.४ प्रतिशत, वसा ०.५ प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट ८६.६ प्रतिशत, आर्द्रता १.५ प्रतिशत, रेशे २.४ प्रतिशत और राख २.६ प्रतिशत है। सौ ग्राम केले में ३६६ कैलोरी होती है।

केले का चूर्ण पके केले के गूदे को फेंट कर सुखा लिया जाता है। उसके बाद इन्हें बारीक पीसकर छन्नी से छान लेते है। इसका सेवन दूध के साथ करते हैं।

केले का आटा – ताजे फल से १२.५ से २७.५५ प्रतिशत आटा निकलता हैं। आटे में कार्बोहाइड्रेट ७६.६ प्रतिशत से ८३.३ प्रतिशत, प्रोटीन २.८ से ४.६ प्रतिशत, ईथर निष्कर्ष ०.४ से ०.६ प्रतिशत, रेशे ०.७ से १.४ प्रतिशत, आर्द्रता १०.२ से १०.६ प्रतिशत पाया जाता है जिसके कारण इसे पौष्टिक, बलदायक, संग्राहक, आहार बताते हैं।

- इसे गेहूं के आटे के साथ मिलाकर ब्रेड एवं बिस्कुट बनाते हैं।
- एल्कोहल युक्त पेय सिरका आदि बनाने में केले के गूदे एवं छिलके का प्रयोग करते है।
- इसके तने के रस का उपयोग रक्त विकार, त्वचा के रोग और कान के रोगों में किया जाता है। यह पसीना लाता है और प्यास शान्त करता है। जहरीले जीवों के काटने पर भी केले का रस लगाया जाता है।
- केले के फूलों की सब्जियाँ बनाई जाती है। जो बहुत ही पौष्टिक होती है। केले के तने की कतरनों पर नाइट्रिक अम्ल की क्रिया से लुगदी बनायी जाती है। जिसका उपयोग टिश्यूपेपर, स्टेंसिल पेपर, क्राफ्ट पेपर और दूसरे उच्च कोटि के कागज बनाने में होता है।
- इसके रेशों से मछली पकड़ने के जाल, रस्सी, चटाई और मोटा कागज बनाया जाता है। रेशे निकालने के लिए पौधे को काटने के बाद तने से परतो को तुरन्त अलग कर लेना चाहिए। रेशों को धोकर सूखने डाल देते है। गीले रेशों को धूप में फैलाने से रंग भूरा सा पीला पड़ जाता है। जिसे आसानी से विरंजित नहीं किया जा सकता। पोटैशियम, सोडियम कार्बोनेट के एक प्रतिशत घोल से उपचरित करके रेशों को मुलायम बनाया जा सकता है।
- इसके पत्तों की राख, तने और फल का छिलका रंगने के काम में लाया जाता है। इसका रंग पक्का होता है। पत्तों एवं डंठलों को सुखाकर जला लेते हैं। और प्राप्त राख को साबुन की तरह कपड़े धोने के काम में उपयोग करते हैं।

पृ ५१ का शेष

प्रभावकारी प्राकृतिक उपाय माना जाता है क्योंकि यह छोटी धमनियों के संकुचन को रोकता है। यह नाड़ी और हृदय की गति को नियमित करता है तथा सांस और पाचन की गड़बड़ियों को दूर करता है।

नकसीर के रोगी को नारियल का पानी नियमित पिलाने तथा कच्ची गिरी खिलाने से लाभ होता है। बार–बार होने वाली हिचकी की अवस्था में नारियल की जटा को जलाकर उसकी राख को शहद में मिलाकर दिन में कई बार चाटना चाहिए।

मुंहा होने पर या पान चबाने से मुंह कट जाने पर नारियल की सूखी गिरी दिन में दो तीन बार चबाने से लाभ होता है।

सूखी गिरी को आधा तोला की मात्रा लेकर बारीक कतर लें। इसे पाव भर दूध में डालकर उबालें तथा शक्कर डालकर पी जाएं। सूखी खाँसी में यह लाभकारी है।

पुराने नारियल की गिरी को बारीक कूटकर उसमें एक चम्मच पिसी हुई हल्दी मिलाकर पोटली में बाँधकर सेक करने से चोट एवं मोच की पीड़ा व सूजन मिट जाती है।

दस किलोग्राम नारियल के पानी को उबालकर शहद के समान गाढ़ा कर लें। इसमें जायफल, सोंठ, काली मिर्च, पीपल तथा जावित्री का तीन तीन ग्राम चूर्ण डालकर रख लें। एसिडिटी के रोगियों को नियमित सुबह–शाम एक से डेढ़ तोला तक की मात्रा में इसे पिलाने से अत्यंत लाभ होता है।

शरद में उपयोगी वनस्पतियां

इस स्तम्भ में हम अक्टूबर से दिसम्बर माह में संग्रह योग्य कुछ वनौषधियों का वर्णन कर रहे हैं जो इस मौसम में अत्यधिक मात्रा में हमारे आस पास के वातावरण में पाये जाते है। इनको एकत्र कर सुखाकर रख लें ताकि पूरे वर्ष आवश्यकतानुसार इन वनौषधियों का उपयोग आप अपने स्वास्थ्य कार्यक्रमों में कर सकें।

द्रोणपुष्पी

इसे एकत्र करने का सबसे अच्छा मौसम अक्टूबर माह है। यह प्रायः वर्षाऋतु के प्रारम्भ होते ही हमारे आसपास के घास के मैदानों, खेत की मेड़ों तथा जंगलों में उग आता है। तथा जाड़े के मौसम तक उपलब्ध रहता है। इसका पौधा लगभग २२ सेमी० से ४५ सेमी तक लम्बा होता है। इसके तने चौकोर, दृढ़, खुरदुरे एवं रोयेंदार होते है। पत्ते पुष्प के प्रत्येक स्तर में आमने सामने दो दो पत्र विन्यास में लगे होते है। पुष्प गोल चक्राकार तथा प्रायः शरद ऋतु में खिलते है। इसका पौधा रगड़ने पर एक विशेष प्रकार का गंध छोड़ता है।

इसके एकत्रण एवं संरक्षण के लिए समूचे पौधों को उखाड़ कर छाये में सुखाकर रख लेते हैं। क्योंकि जाड़े के समाप्त होते ही यह पौधा स्वतः विलुप्त हो जाता है। इस परिस्थिति में सूखे पंचांग का उपयोग समयानुसार करते है।

वानस्पतिक परिचय

हिन्दी नाम – गुमा
लैटिन नाम – ल्यूकास अस्परा
कुल – लैबिआटी
पुष्पक्रम – वर्ती सीलास्टर
एकत्रण मौसम – अक्तूबर – मार्च
प्रयोज्य अंग – पंचाग, पत्र, पुष्प
औषधीय गुण – वात कफ निस्सारक, उष्णवीर्य, कटु, कामला, ज्वरनाशक, स्वेदजनन, सर्दी, सिरदर्द, पेटदर्द, श्वासरोग में इसका स्वरस उपयुक्त होता है।

हुरहुर

इसके एकत्रीकरण तथा संरक्षण का सर्वश्रेष्ठ मौसम–अक्तूबर से दिसम्बर के बीच का होता है। यह प्रायः बरसात के प्रारम्भ होते ही हमारे आसपास के मैदानों में उग आता है। इसका पौधा विशेष प्रकार से गंध से युक्त होता है। यह प्रायः दो प्रकार का होता है। एक श्वेत पुष्प वाला तथा दूसरा पीले पुष्प वाला। पौधे रोमयुक्त एवं चिपचिपे होते है। फलियां गोल, चिपटी, रेशेदार लम्बे वृन्तों से युक्त होती है। बीज राई के समान होते हैं।

इसे एकत्र करने के लिए संपूर्ण पौधे के उखाड़ कर बीज को अलग कर लेते हैं। तथा संपूर्ण पंचांग को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर छाये में सुखाकर सूखे डिब्बे में भर कर रख लेते हैं।

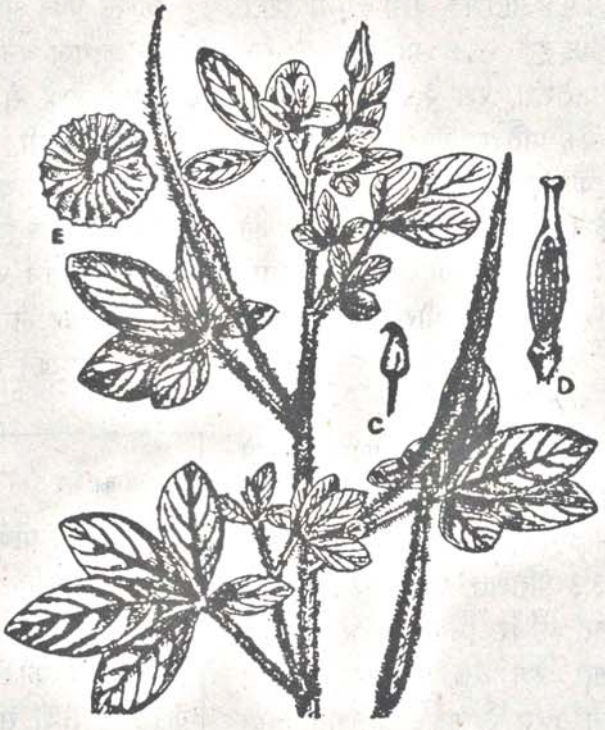

वानस्पतिक परिचय

हिन्दी नाम – हुरहुर सफेद, हुरहुर पीला
लैटिन नाम – गाइनेन्ड्राप्सिस गाइनेन्ड्रा (क्लआम विस्कासा)
कुल – कैपेरिडेसी
प्रयोज्य अंग – पंचाग एवं बीज
औषधीय उपयोग – स्वेद जनन, उत्तेजक, दाहजनक, कोष्ठवात–प्रशमन एवं कृमिन्घ।

सहदेवी

यह अक्सर बरसात के प्रारम्भ से लेकर जाड़े के अंत तक बहुत अधिक मात्रा में हमारे आस पास के मैदानों में सड़क के किनारे घास के मैदान में उग आता है। इसके संग्रह का उचित समय पुष्प के आने के बाद है। इन पौधों में प्रायः बैंगनी रंग के पुष्प मुण्डक क्रम में लगते हैं। इसका पौधा ८ इंच से ३ फीट तक ऊंचा व रोमश होता है। इसका संपूर्ण पौधा औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

इस पौधे के एकत्रीकरण के लिए अक्तूबर–दिसम्बर माह के बीच में पुष्प आने के समय सम्पूर्ण पौधों को जड़ सहित उखाड़ कर पानी से तुरन्त सम्पूर्ण पौधे को धोकर सड़े गले तथा रोगों से ग्रसित पत्तों को तोड कर फेंक देते हैं। तथा स्वस्थ पौधों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर छाया में सुखाकर बंद डिब्बों में सुरक्षित रख लेते हैं।

वानस्पतिक परिचय

हिन्दी नाम – सहदेई
अंग्रेजी – फ्लीबेन
लैटिन नाम – बर्नोनिआसानोरया
कुल – काम्पोजिटी
प्रयोज्यअंग – पंचांग, मूल
एकत्रीकरण – अक्तूबर–दिसम्बर
औषधीयगुण–ज्वरनाशक, शोथहर, कृमिघ्न, स्वेदजनक, शीत वीर्य।

सरफोंका

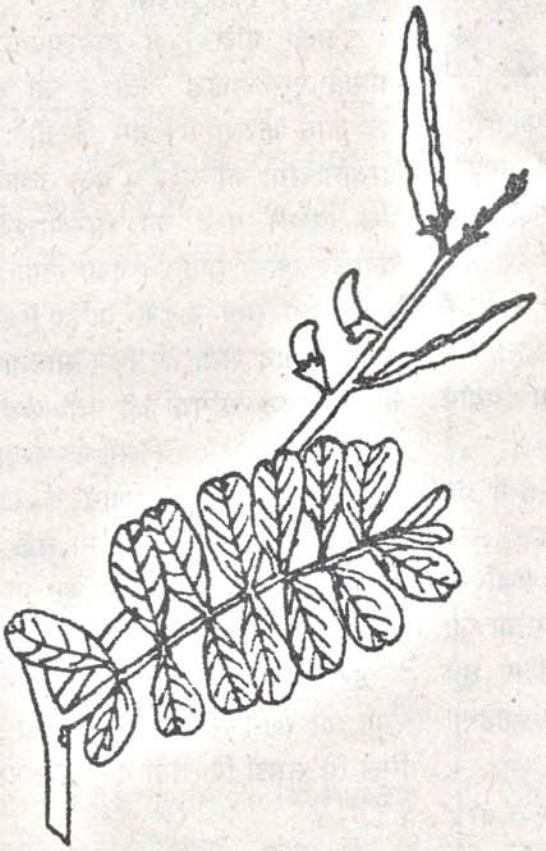

यह प्रायः जाड़े के प्रारम्भ होने के साथ ही स्वतः ही नष्ट हो जाता है। और गर्मी के मौसम में पुनः उग जाता है। यह प्रायः हमारे आसपास के जंगलों एवं मैदानों में वर्षा के मौसम में नीले एवे श्वेत पुष्पों से सुशोभित होता है। इसका पौधा लगभग २–३ फीट ऊंचा होता है। पत्ते प्रायः मेथी के पत्ते के समान होते हैं। पत्रकों को तोड़ने पर वे बाण के पंख के आकार के समान टूटते है। इसलिए इसे शरपुंखा कहते है। पुष्प प्रायः जामुनी या लाल रंग के मंजरियों में निकलते है। फली अल्पमुडी हुई ६–१० बीजों से युक्त होती है।

इस औषध द्रव्य एकत्रीकरण के लिए सबसे उचित मौसम अक्तूबर – नवम्बर का महिना होता है इस मौसम में संपूर्ण पौधों को उखाड़ कर इसके मूल को साफकर पानी से धोकर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर छाये में सुखाकर अलग डिब्बे में रख लेते हैं तथा इसके बीज एवं पंचांग को भी सुखा कर अलग अलग डिब्बों में रख लेते हैं। तथा उचित समय आने पर इसका प्रयोग औषध निर्माण में करते हैं।

वानस्पतिक परिचय

हिन्दी – सरफोंका
लैटिन – टेफ्रोसिया पर्पुरिया
कुल – लैग्युमिनोसी
प्रयोज्य अंग – बीज, मूल, पंचांग
एकत्रीकरण – जुलाई – दिसम्बर
औषधीय गुण–कफहर, रक्तशोधक, पित्तसारक, मूत्रजनक, अतिसार, कास।

जीवनीय एरिया डिस्ट्रीब्यूटर

जीवनीय गंभीर व प्रबुद्ध पाठकों की स्वास्थ्य पत्रिका है। अब हम इसमें पर्यावरण, स्वास्थ्य नीति एवं विकास के मुद्दे भी शामिल कर रहे हैं। पत्रिका का शहरों और गावों में बड़ा पाठक वर्ग है। अब यह पत्रिका नियमित रूप से और अधिक आकर्षक रूप में सामने आ रही है। हम पत्रिका के हिन्दी और अंग्रेजी संस्करण के लिये आकर्षक कमीशन पर एरिया डिस्ट्रीब्यूटर प्रस्ताव आमन्त्रित करते हैं। कृपया अपने व्यवसाय की पूर्ण जानकारी देते हुये अपनी शर्तों, कमीशन की दर और वितरण क्षेत्र का विवरण देते हुये शीघ्र सम्पर्क करें।

प्रसार व्यवस्थापक

जीवनीय सोसायटी

ई-III/249, सेक्टर एच, अलीगंज,

लखनऊ - २२६०२०, फोन : ०५२२-७७५६८

जंगली निकवन : दमे की रामबाण दवा

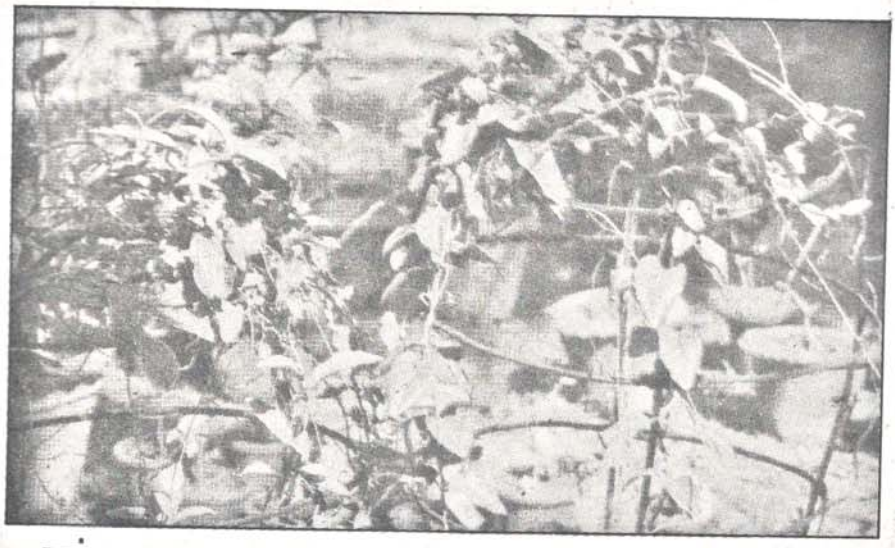

जंगली निकवन या अंतमूल दमे की अचूक दवा है। यह अंत्रपाचिनी, पित्तवल्ली, गंधन, मूलरास्ना आदि **संस्कृत** नामों से जानी जाती है। इसका वानस्पतिक **लैटिन** लाम टाइलोफोरा आस्थ्माटिका है। **गुजराती** में इसे अंतोमूल, **मराठी** में खडकी रास्ना, **तमिल** में नलपल्लाइ, **तेलुगु** में कुरिंज, **मलयालम** में बेरी पाला और **अंग्रेजी** में वोमिटिंग स्वैलो कहते हैं।

परिचय

यह एस्क्लेपिएडॅसी कुल का पौधा है। इसे धूप में गमले में उगाया जा सकता है। यह एक बहुवर्षीय सदाबहार लता है। पत्तियाँ मांसल होती है। इस पर हल्का मखमली फर होता है। ये ५ से. मी. चौड़ी एवं १० सेमी. लम्बी होती है। ताजी अवस्था में स्वाद एवं गंध हल्लासकर एवं सूखने पर गन्धहीन एवं रुचिहीन होता है। पुष्प बहुत छोटे छोटे, हल्के पीले रंग के अन्दर से बैगनी एवं गुच्छों में होते है। फल २ से ४ इंच लम्बा आगे की ओर नुकीला होता है। जड़ बहुत लम्बे, मांसल, हल्के पीले या मटमैले तन्तु युक्त आसानी से टूटने वाले गंधहीन, स्वाद प्रारंभ में मीठा लेकिन बाद में कटु होता है। इनके मूल एवं पत्र का औषधीय उपयोग किया जाता है।

इसे धूप में गमले में उगाया जा सकता है। यह एक सदाबहार लता है। लता को बीज से या जड़ों के साथ–साथ उगे प्ररोहों से लगाया जा सकता है। इसे पनपने के लिए धूप और पानी दोनों की अधिकता चाहिए।

औषधीय गुण

इसमें टाइलोफोरीन, और ताइलोफोरिनाइन् रवेदार एल्कोलाइड पाया जाता है। इसके अतिरिक्त १५ प्रतिशत खनिज, ०.१८ प्रतिशत रवेदार अन्य पदार्थ, ०.२६ प्रतिशत उड़नशील तैल, एवं वामक द्रव्य आदि पाये जाते हैं।

इसके मूल तथा पत्र वामक, कफनिःसारक, स्वेदल, रक्तशोधक, वातानुलोमक एवं आमपाचक है। अल्पमात्रा में इससे खांसी दमा, बच्चों की कुकुर खांसी, अतिसार एवं संग्रहणी आदि में बहुत लाभ होता है। अधिक मात्रा में यह वामक तथा अधिक बार प्रयोग करने से वमन के साथ विरेचन भी कराती है।

इसकी पत्तियों में टाइलोफोरीन नामक एल्केलाइड होता है जो दमे पर काम करता है। दमे के दौरे के दर्म्यान रोगी को सबेरे ५ बजे उठाकर एक अच्छी पत्ती को धो–पोंछकर चबाकर खाना चाहिए। ऐसा लगातार पांच दिनों तक करना चाहिए। इसे खाने के बाद रोगी को फिर सो जाना चाहिए। कुछ रोगियों को पत्ती कड़वी लगती है और किसी–किसी को बेस्वाद जान पड़ती है। पत्ती खाने के बाद एक घंटे तक रोगी को पानी तक न दिया जाय। एक घंटे बाद वह पानी या हल्की चाय पी सकता है।

इस पत्ती को खाने के बाद यदि रोगी को खाने में नमक का स्वाद न मिले तो समझें कि दवा काम कर रही है।

रक्त में मिलने के पश्चात् जब यह फुफ्फुसों में पहुंचती है तो उनकी श्लैष्मिक कला क्षुब्ध कर उन्हें उत्तेजित कर देती है। इससे कफ का स्राव

➡

कुप्पी

यह पौधा भारत के सभी मैदानी भागों में पाया जाता है। प्रायः बरसात के मौसम में यह उद्यानों व खेतों में तथा सड़कों व मकानों के आसपास उग आता है।

परिचय – यह प्रायः ७५ से.मी. ऊंचा एक वर्षीय एडफार्बिएसिकुल का जंगली शाकीय पौधा है। इसके पत्ते प्रायः ३–८ से.मी. लंबे अण्डाकार अथवा चतुष्कोण अंडाकार होते है। पत्ते में तीन शिराएं होती है। किनारे दंतुर होते है। पुष्प बालियों जैसे गुच्छों में छोटे छोटे होते है। नरपुष्प मादा पुष्प की अपेक्षा छोटे छोटे होते हैं। तथा पुष्पक्रम में ऊपर की ओर लगे रहते हैं। मादा पुष्प के नीचे एक तिकोना सा सहपत्र होता है। फल प्रायः रोयेंदार एवं सहपत्रों से ढ़के रहते हैं।

भाषावार नाम : हिन्दी – कुप्पी, **संस्कृत** – हरितमंजरी, **मराठी** – खोकली, **मलयालम** – कुप्पामणि, **बंगला** – मुक्त झूरि, मुक्तबर्सी, **तेलुगु** – कुप्पेमणि **लैटिन** – आकालिफा इंडिका

औषधीय गुण – यह ब्रोंकाइटिस, श्वास नली की सूजन, श्वास रोग या दमा, निमोनिया तथा गठिया में उपयोगी है।

पत्तों का रस वमनकारी होता है, अर्थात इसके सेवन से कै हो जाती है। इसके पत्तों एवं जड़ों में रेचक गुण भी होते हैं।

ताजे पत्तों को पीस कर फोड़ों पर लगाने से काफी लाभ होता है।

कुप्पी के पौधों पर जिस समय फल आ जाय तब उसे समूचा उखाड़ कर सुखा लेते हैं। और इसका उपयोग आवश्यकतानुसार काढ़ा बनाकर करते हैं। इसके पौधे का पंचांग, लसोढ़ा की पत्ती, अडूसा की पत्ती कुटकी चिरायता के साथ क्वाथ बनाकर पीने से वमन, ज्वर, विसर्प (कफजन्य) शोथ आदि रोगों में लाभ होता है।

➡

अधिक मात्रा में होता है। और फुप्फुसों में चिपटा कफ आसानी से निकलने लगता है। इससे फुप्फुसों से कफ निकल जाता है और वे स्वच्छ हो जाते है।

उपयोग

- कफ विकारों में इसके चूर्ण को घोड़वच एवं मुलेठी के साथ देने पर लाभ होता है।
- अजीर्ण आदि में वमन कराने के लिए ४ इंच लम्बी ताजी जड़ की छाल पानी में घिस कर देने से वमन होता है। या १–२ माशा पत्र चूर्ण जल के साथ दिया जाता है।
- १ माशा चूर्ण के रूप में अतिसार, रक्तातिसार एवं संग्रहणी में देने से बहुत लाभ होता है। इसके साथ सोंठ, गोंद, अल्पमात्रा में मिलाई जा सकती है।
- वात रक्त में इसके मूल का वाह्यलेप लाभकारी होता है।
- आमवाताभ विकृति, सन्धिवात, शरीर पीडा एवं सर्पदंश आदि में यह बहुत उपयोगी पौधा है। कुक्कुरखांसी, श्वसनी शोथ और अन्य श्वासरोगों में भी यह लता उपयोगी है। इसके लिए रोगी को हर चार घंटे पर तीन पत्तियां खिलानी चाहिए। पत्तियों का अर्क ज्वर और अरुचि में दिया जाता है।

दमे की तीव्रता के अधिक होने पर ही जंगली निकवन की पत्ती का सेवन उत्तम रहता है। पत्ती का सेवन करने के दर्म्यान एलोपैथी दवाएं और सूंघने वाली दवाएं न लें। जिन लोगों ने बरसों एलोपैथी दवाएं खायी हैं उन पर पत्तियों का असर बहुत देर से मगर अवश्य होता है।

पत्तियों का अधिक प्रयोग बहुत दिनों तक करने से अतिसार, शिथिलता, हृदय दौर्बल्य और पक्षाघात की भी संभावना रहती है अतः इसका सेवन वैद्य के परामर्श के बिना न करें।

सनई के औषधीय उपयोग

डॉ. रमेश चन्द्र आर्य, मेरठ

परिचय

यह लेगूमिनोसी कुल का पौधा है। लोग इसे रेशे प्राप्त करने के लिए बोते हैं। इनके रेशों से बोरी, टाट, रस्सी और कच्चा कपड़ा बनाया जाता है।

इसका पौधा सीधा, अनेक शाखाओं से युक्त एवं ३–४ फीट ऊँचा होता है। शाखाएँ चार धारी युक्त होती हैं। पत्ते १ से २ इंच बड़े चौडाई लिए तिर्यगायताकार, छोटे वृन्त से युक्त होते हैं। पुष्प : ३ से ७ पुष्प युक्त मंजरियों में, १.५ – ३ इंच बड़े नीले या पीताभ आते हैं। फली – अल्पवृन्त युक्त १ इंच लंबी एवं १२ या अधिक बीजों से युक्त होती है। इसके बीज एवं पत्तों का उपयोग औषधीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

यह एक वन्य पादप है जो विशेषतः म्यान्मार, श्रीलंका तथा हिमालय के क्षेत्र में पाया जाता है। सामान्यतया यह सनई नाम से हिन्दी प्रान्तों में प्रसिद्ध है। क्षेत्रीय भाषाओं में शणपुष्पी को घागरी, घुघरो तथा वनसन नामों से भी जाना जाता है। पश्चिमोत्तर भारत में यह पटसन एवं झोझक 'नाम से भी लोक प्रचलित है लैटिन नाम क्रोतोलेरिया वेर्रूफोसा।

औषधीय गुण : इस लघु, रूक्षं–तीक्ष्ण गुण कटु–तिक्त–कषाय रस, कटुविपाक तथा उष्ण वीर्य द्रव्य का वैज्ञानिक विश्लेषण करने पर इसमें वाइटेक्सिन, आइसो–वाइटेक्सिन, आइसोसेनाकिरकिन, ओ–एसिटिल–आइसोसेन किरकिन तथा बी–सिटो–स्टिरॉल रासायनिक द्रव्य पाए गये हैं। इसका प्रभावः वामक होने के कारण आचार्य चरक ने इसकी गणना वमनोपग द्रव्यों में की है। गुणात्मक संगठन की विशेषता से शणपुष्पी श्लेष्मज विकारों का नाश, तथा वामक प्रभाव के कारण पित्त का भी संशोधन करती है।

औषधीय उपयोग

शणपुष्पी के कुछ औषधीय प्रयोग ग्राम्य जन परम्परया करते आ रहे हैं। ऐसे प्रयोगों में वाह्य प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं। दद्रु, कण्डु तथा अन्य सशोथ त्वग्विकारों में इसके पत्रों के जल में पीस कर लेप करने से अतीव लाभ प्राप्त होता है। वाह्य विद्रधि पर भी इसके बीजों की पुल्टिस बाँधने से या तो विद्रधि दब जाती है, अन्यथा उसका शीघ्र ही पाक होकर पाटन हो जाता है। बीजों में व्रण–पाचन क्षमता बहुत अच्छी पायी गई है।

शणपुष्पी का पत्र–क्वाथ गण्डूष धारण करने पर मुख–पाक, कण्ठशोथ, तथा तुण्डीकेरी रोगों में भी बहुत लाभदायक पाया गया है। पत्र–क्वाथ का मुख द्वारा सेवन करने पर यह रक्त विकारों का नाश करता है। रक्तशोधन करने से आभ्यन्तर प्रयोग द्वारा भी त्वचा के विकारों का नाश करता है। अतिसार तथा प्रवाहिका में पत्र स्वरस का सेवन ५–१० मि.ली. अहोरात्र में द्विवार कराना चाहिए।

वमन–कर्म में शणपुष्पी की मूल के चूर्ण का प्रयोग उष्ण जल के साथ कराया जाता है।

चिकित्सा में शणपुष्पी का प्रयोग अल्प होते हुए भी त्वचा के विकारों तथा विद्रधि में इसके लोक प्रचलित उपयोग तथा मुखरोग और रक्तविकार में अनुशंसित प्रयोग महत्वपूर्ण हैं। विशेष रूप से त्वचा विकारों में शणपुष्पी की विशिष्ट कार्मुकता को प्रकाशित करने के लिए वैज्ञानिक अध्ययनों की बहुत आवश्यकता है।

मोती लाल वोरा
राज्यपाल उ.प्र.

पल्स पोलियो प्रतिरक्षण

9 दिसम्बर, 1995
20 जनवरी, 1996

पोलियो के सिर्फ तीन ड्राप
चैन से रहें माँ-बाप

9 दिसम्बर, 20 जनवरी याद रहे
पोलियो दवा पिलाने का कार्य रहे

Anu Image/ UPID/ 95

सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ0प्र0

शुद्धता का प्रतीक...
...शुद्ध वनस्पति

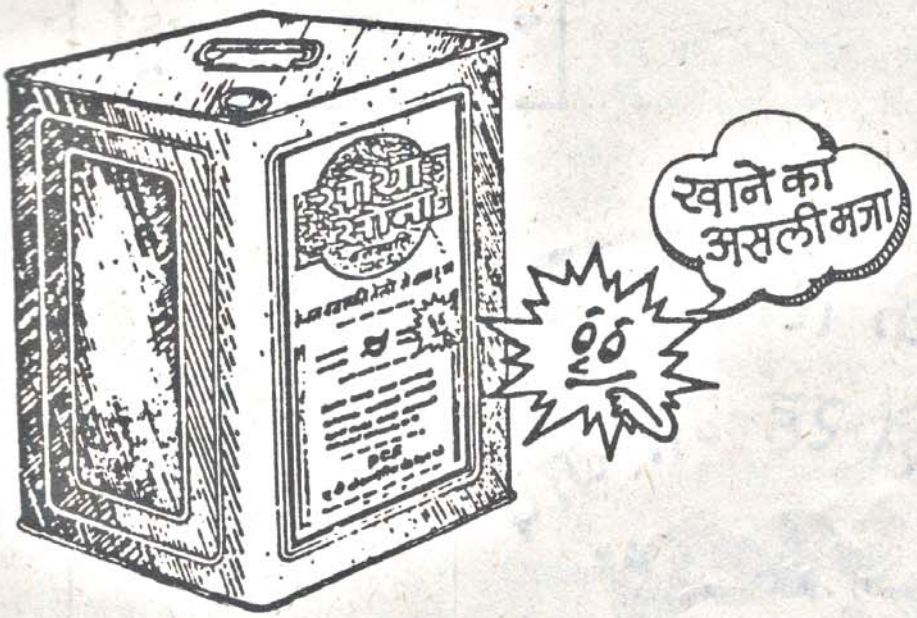

सोया-सोना एवं हिमालय वनस्पति में निर्मल शुद्धता व पौष्टिकता का अनूठा संगम है। चर्बी रहित विशुद्ध तेलों से बना हुआ यह वनस्पति आपके खाने में असली स्वाद के साथ तरोताज़गी भी बनाए रखता है।

बाजार में खुला व छोटे बड़े पैक में आसानी से उपलब्ध है।

सोया सोना वनस्पति

१५ किलो के टिन में

हिमालय वनस्पति

१,२ व ५ किलो के पॉली जार में

PF
का उत्पादन

स्वादिष्ट भोजन का राज
सोया सोना व हिमालय वनस्पति के साथ

निर्माता :
सोयाबीन एण्ड वनस्पति इण्डस्ट्रीज काम्पलेक्स
हल्दूचौड़, (नैनीताल) उ. प्र.
यू.पी. कोआपरेटिव फेडरेशन लि. ३२, स्टेशन रोड, लखनऊ की इकाई

पौष्टिक व्यंजन

टमाटर आमलेट

सामग्री :
१ प्याला बेसन
१ टमाटर
१ प्याज़
२ हरी मिर्च
१ टुकड़ा अदरक
१ छोटा चम्मच ज़ीरा
१ बड़ा चम्मच कटी हुई धनिया
तलने के लिये घी या तेल

विधि

टमाटर प्याज़ अदरक और हरी मिर्च काट लें और महीन पीसकर बेसन में हरी धनिया, ज़ीरा और नमक मिला लें। पानी डाल कर इतना गाढ़ा घोल तैयार कर लें जिसे चम्मच से हिलाया जा सके।

तवे या फ्राइंगपैन को आंच पर चढ़ा कर थोड़ासा तेल या घी चुपड़ लें। दो बड़े चम्मच बेसन के घोल को तवे पर इस प्रकार डालें कि वह गोल मोटे आमलेट की शक्ल का बन जाये। आधा छोटा चम्मच तेल या घी उस के चारों ओर डालें। एक मिनट तक हल्की आंच पर पकने दें। सावधानी से उसे पलटें और फिर आधा चम्मच तेल या घी उस के चारों ओर डालें। लाल हो जाने पर उतार लें। आरम्भ में थोड़ी कठिनाई तो अवश्य होगी पर अभ्यास करते रहने से वह ठीक बनेगा।

मूंग की दाल का दोसा

सामग्री :
२ प्याले मूंग की दाल
१ प्याला चावल
१ छोटा चम्मच ज़ीरा
३ हरी मिर्च
नमक स्वादानुसार और तलने के लिये तेल।

विधि :

दाल और चावल को पहले रात–भर भिगो कर रखें और पानी बहा कर पसार कर पीस लें ताकि मुलायम लपसी बन जाये। ज़ीरा, बारीक कटी हुई मिर्च और स्वादानुसार नमक मिला लें। फिर तवा चढ़ा कर उस में कुछ तेल की बूंदें डालें और घोल को बड़े चम्मच से तवे के मध्य में डालें और उसे चारों ओर फैला दें ताकि वह गोलाकार की शक्ल ले ले। धीमी आंच पर तब तक पकायें जब तक ऊपर वाली सतह सूख कर सुर्ख न हो जाये। अब इसे पलट दें। यदि आप ने इसे सचमुच बहुत पतला बना लिया है तो इसे पलटने की जरूरत नहीं। केवल इसे दोहरा करें और नारियल की चटनी के साथ बड़े मज़े ले कर खायें।

अंकुरित अन्न सलाद

सामग्री
अंकुरित मूँग – डेढ़ कप
प्याज – दो
मुसम्मी – चार अथवा
सन्तरा – छ
खीरा – एक कप
हरी मिर्च – दो
नमक – आधा चम्मच
अदरक – आवश्यकतानुसार

निर्माण विधि

समूची मूंग को साफ करके उसे रात भर एक बर्तन में भिगो दें। प्रातः काल उसे अच्छी तरह धो कर बचा पानी फेंक दें और उसे चौबीस घंटे के लिये ढक कर रख दें। अब उसमें अंकुर निकल आयेंगे। अब उसे हल्के से धोकर पानी में तैर रहे छिलकों को निकाल दें, बचा पानी फेंक दें।

प्याज, हरी मिर्च और अदरक को महीन महीन काट लें। खीरे को भी महीन काट लें। संतरे अथवा मुसम्मी का रस निकाल लें आवश्यकतानुसार नमक डालकर सब चीजों को मिला लें।

फलों का पकौड़ा

सामग्री
१ सेब
१ नाशपाती
१ अमरूद
१ कच्चा केला, घी, हरी कटी धनियां, करी पत्ता,
३ हरी मिर्च, थोड़र–सा कटा अदरक, काली मिर्च, नमक और बेसन।

विधि – सभी फलों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर किसी बर्तन में रख लें। अब बेसन में कटी हुई मिर्च, हरी धनियां तथा अदरक मिला दें। फिर इसमें इतना पानी डालें कि पकौड़े के घोल तैयार हो जाएं कड़ाई में घी गरम कर उसमें पकौड़े बना कर तल लें। ऊपर से चाट मसाला डाल कर टमाटर के सॉस के साथ खाएं–खिलाएं।

सूजी–आलू के पकौड़े

सामग्री
४ उबले आलू
२ कप सूजी
२ कप दही, लाल मिर्च, नमक और तेल।

विधि – आलुओं को टुकड़ों में काट लें। सूजी और दही को एक में मिला दें। २–३ घंटे बाद जब दही फूल जाए, तब उसमें कटे आलू डाल दें। तेल गरम कर इसके पकौड़े बनाकर तल लें। इसको किसी चटनी के साथ खाएं।

अरोचक

'अरोचक' शब्द मूलतः रुच् धातु से बना है। रुच् धातु का अर्थ है चमकना, सुन्दर दिखना, अच्छा लगना। इसको ण्वुल् प्रत्यय लगाने से रोचक शब्द बनता है। इसका अर्थ है अच्छा लगने वाला। अच्छे लगने वाले स्वाद के लिए रोचक शब्द विशेष रूप से प्रयोग में है। रोचक शब्द का नञ् समास निषेधार्थक अर्थात् अच्छा न लगने वाले अर्थ में अरोचक शब्द प्रयुक्त होता है।

आयुर्वेद में अरोचक एक रोग है। अन्न की इच्छा होने पर भी सामने आने पर इच्छा न होना, मुंह में डालने पर खाने में कष्ट होना इस स्थिति को अरोचक कहते है। खाने के संबंध में रुचि न रहना संक्षेप में अरोचक है।

अरोचक के भी वृद्ध भोज के अनुसार तीन भेद है। १. अरुचि जिसमें मुंह में डाले गये खाद्य वस्तु के स्वाद का पता न चलना, २. भक्तद्वेष जिस में भोजन की मात्र कल्पना, भोजन को देखकर या केवल भोजन की बात सुनकर उसके प्रति द्वेष उत्पन्न होता है और ३. अभक्तच्छंद, जिसमें अन्न की इच्छा ही नहीं होती।

दोषों को कुपित करने वाले पदार्थो का भक्षण करने से या शोक, भय क्रोध, अतिलोभ से अथवा रूप या गंध की दृष्टि से घृणित पदार्थो के सेवन से अरोचक रोग होता है। इसमें कुपित दोष अन्नवह स्रोत और हृदय में प्रविष्ट होकर अन्न के प्रति अनिच्छा उत्पन्न करते हैं।

यह पांच प्रकार का है १. वातज, २. पित्तज ३. कफज ४. सन्निपातज और ५. मनस्तापज।

वातज अरोचक – दांतों में खट्टा, मीठा, गरम ठंडा लगना, मुंह का जायका कसैला रहना, हृदय और शरीर में पीड़ा, मुंह का जायका खराब होना ये इसके लक्षण है।

पित्तज अरोचक – मुंह का जायका कडुआ (मिर्च), खट्टा, गरम, बेस्वाद होना, प्यास लगना, दाह, मूर्च्छा आदि इसके लक्षण है।

कफज अरोचक – जायका मीठा या कुछ नमकीन, मुंह चिकना, भारीपन, शीतलता, जकडन, खुजली, कफका स्रोत, शरीर शिथिल होना तंद्रा, स्वर भंग, निगलने में कष्ट होना ये इसके लक्षण है।

सन्निपातज अरोचक – मुंह का स्वाद एकदम खराब हो जाता है और तीनों दोषों के मिले–जुले लक्षण होते हैं।

मनस्तापज या आगन्तुक अरोचक – शोक, भयादि मनोविकारों से उत्पन्न होने वाले अरोचक में व्याकुलता, मोह, स्वाद हीनता और भारीपन ये लक्षण होते हैं। घृणित पदार्थो के सेवन से भी अरोचक हो जाता है।

जिन बातों से भोजन के प्रति रुचि उत्पन्न हो सके, उन्हीं पदार्थो का सेवन इसका उपचार है। मनोविकार से उत्पन्न अरोचक की स्थिति में मन के दैन्य को दूर करने के उपाय किये जाने चाहिए।

दोषों का ध्यान रखते हुए काली मिर्च, सोंठ, छोटी पीपल, इलायची, दाल चीनी, जीरा, सौंफ, दाडिम, अदरख, नींबू, सैंधव, हींग आदि का सेवन जठराग्नि को उद्दीप्त कर भूख बढ़ाता है और अरुचि को दूर करता है।

खांसी की आदिवासी चिकित्सा

लटजीरे के पूरे पेड़ को छोटे–छोटे टुकड़ों में काट कर छाया में सुखा लें। इन टुकड़ों को थोड़े पानी के साथ एक मिट्टी के बर्तन में इक्कीस दिन तक रखें फिर छान लें। छने हुये द्रव में कुछ समय पश्चात गाढ़ा होने पर रवे जम जाते हैं। इन रवों को एक कांच के बर्तन में इकट्ठा कर लें। एक चुटकी रवा दिन में एक बार खांसी ठीक होने तक सेवन करें।

कंटकारी (भटकटैया, सोलेनम जैन्थोकार्पम) की जड़ें खोद लें इन्हें अच्छी तरह धो कर छोटा छोटा काट कर काढ़ा बना लें। एक कप काढ़ा दिन में तीन बार तीन दिन तक लें।

कंटकारी का पूरा पेड़ उखाड़ कर साफ करके छोटे टुकड़ों में काट लें अब इन टुकड़ों को सेंधा नमक छिड़कते हुये पतले मुंह वाले मिट्टी के प्याले से ढ़क दें। अब एक मोटे कपड़े को सनी मिट्टी में लपेट कर बर्तन के मुंह को अच्छी तरह से सीलबन्द कर दें। अब इस बर्तन को एक गड्ढे में रखकर उसके ऊपर उपले रख कर जला दें। जब बर्तन ठंडा हो जाय तो उसके भीतर की भस्म निकाल लें। यह भस्म एक साल तक प्रभावी रहती है। इस भस्म की एक चुटकी पानी से सोते समय चार पांच दिन तक सेवन करें।

गुंजा (घुंघची व एक्टस प्री केटोरियस) की पत्तियों का रस निकाल लें। इसके दो या तीन चम्मच प्रातः और सायं तीन दिनों तक सेवन करें।

काली तुलसी (ओसेमम सैन्कटम) की पत्तियों का रस दो चम्मच लें और उसमें दो चम्मच प्याज का रस तथा एक चने के बराबर नमक डाल कर इस दवा के चार चम्मच प्रातः काल तीन दिन तक सेवन करें।

बिदारी (सोलेनम वरबैस्कीफोलियम) की जड़ लें। इसे पीस कर चूर्ण बना लें आधा कप चूर्ण को दो कप पानी में उबालें जब एक कप पानी शेष रह जाय तो ठंढ़ा कर लें। इस दवा का एक कप सायं सात दिनों तक लें।

(डा. मारुताई डिसूजा के संकलन 'आदिवासी दावादूरी' से साभार)

पल्स पोलियो अभियान में जीवनीय सोसायटी का सहयोग

प्रदेश में पल्स पोलियो टीकाकरण कार्यक्रम का शुभारम्भ ३० अगस्त से एक अभियान के रूप में हो गया। तिलक हाल (उत्तर प्रदेश सचिवालय) में इस अभियान का शुभारम्भ ११ बच्चों को स्वास्थ्य राज्यमंत्री प्रवीण सिंह ऐरन के कर कमलों से पोलियो ड्राप पिलाकर किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता भारत सरकार के परिवार कल्याण सचिव जगदीश चन्द्र पन्त ने की। मुख्य अतिथि के रूप में प्रदेश के राज्य स्वास्थ्य मंत्री प्रवीण सिंह ऐरन ने कहाकि प्रदेश, देश और नई पीढ़ी के लिए आज का दिन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विश्व स्वास्थ्य संगठन सन् २००० ई. तक विश्व को पोलियो मुक्त करना चाहता है। इसी कड़ी में हम एक कदम आगे बढ़ कर इस अभियान का शुभारम्भ कर रहे हैं।

श्री ऐरन ने रोटरी क्लब, लायन्स क्लब तथा अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं का आभार व्यक्त करते हुए उनसे अपील की कि यह एक अच्छा अवसर है कि मानवता के ऊपर लगे पोलियो रूपी कलंक को मिटाने के लिए इस अभियान को प्रदेश के सुदूर ग्रामीण अंचलों, गांव और गलियों तक ले जाएं। उन्होंने यह भी कहाकि यह कार्य केवल सरकारी तंत्र के माध्यम से पूरा नहीं होगा, अपितु इसके लिए जन साधारण की भागीदारी अति आवश्यक है क्योंकि जब तक इस अभियान को जन–आन्दोलन का रूप नहीं दिया जायेगा, तब तक प्रदेश से पोलियो को समूल समाप्त नहीं किया जा सकता।

उन्होंने प्रेस और मीडिया से विशेष आग्रह किया कि वे विज्ञापन के रूप में नहीं अपितु पत्र पत्रिकाओं में समाचार, लेख तथा सम्पादकीय इत्यादि लिखकर इस अभियान को साकार रूप प्रदान करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाकर सहयोग करें। पोलियो अभियान की सफलता सम्पूर्ण देश में तभी हो सकेगी जबकि उत्तर प्रदेश में २००० ई. तक पोलियो जड़ से समाप्त हो जाये।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए श्री जगदीशचन्द्र पंत ने कहा कि पल्स पोलियो अभियान के प्रचार का शुभारम्भ आज से विधिवत हो गया है। किसी भी कार्यक्रम की सफलता उसके प्रचार पर निर्भर करती है। उन्होंने बताया कि वर्ष १९८८ में विश्व स्वास्थ्य संगठन की ओर से यह संकल्प लिया गया था कि २००० ई. तक विश्व से पोलियो का उन्मूलन करना है। इसके लिए एक रणनीति बना करके बच्चों को आगामी ६ दिसम्बर, १९९५ एवं २० जनवरी, १९९६ को विशेष रूप से एक साथ पोलियो की खुराक दी जानी है।

उन्होंने प्रदेश को आश्वासन दिया कि वे प्रदेश में वैक्सीन की कमी नहीं होने देंगे। साथ ही बच्चों के अभिभावकों से अपील की कि वे इन तिथियों में अपने ५ वर्ष तक के बच्चों को पोलियों की खुराक विशेष पोलियो केन्द्रों पर पहुंचकर अवश्य पिलवायें। रेडक्रास की भूमिका की सराहना करते हुए उन्होंने कहाकि वह गांव–गांव में इस कार्यक्रम को सफलतापूर्वक संचालित करने में मदद कर सकता है। 'जीवनीय सोसायटी' के सचिव डा. नरेन्द्र मेहरोत्रा इस कार्यक्रम में आमन्त्रित थे। उन्होंने इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में जीवनीय सोसायटी के पूरे सहयोग का आश्वासन दिया। सोसायटी इस हेतु साहित्य का प्रकाशन तथा प्रचार का काम करने जा रही है।

औषधीय पौधों की निर्देशिका

जीवनीय सोसाईटी उत्तर भारत में औषधीय पौधों की उपलब्धता एवं संभावनाओं के सर्वेक्षण पर आधारित एक निर्देशिका तैयार कर रही है। जिसका मुख्य उद्देश्य देश के इन भागों में फैले स्वास्थ्य कर्मियों एवं अन्य व्यक्तियों को उपलब्ध औषधीय पौधों की जानकारी देना है। ताकि वे इसका उपयोग अपने स्वास्थ्य कार्यक्रमों में कर सकें। इसके अतिरिक्त इन भागों में जो बहुमूल्य वनस्पतियां नष्ट हो रही है उनके संरक्षण एवं कृषि के प्रयास भी किए जा सकें। तथा इन बहुमूल्य वनौषधियों को विलुप्त होने से बचाया जा सके। इसके लिए भारत सरकार का ग्रामीण विकास मंत्रालय इन बहुमूल्य औषध द्रव्यों की कृषि पर विशेष बल दे रहा है। जिससे इस क्षेत्र में संलग्न कृषकों को उत्पादन का उचित मूल्य मिल सके तथा औषधि निर्माताओं को भी अच्छे औषध द्रव्य मिल सकें। सर्वेक्षण का मुख्य क्षेत्र उ. प्र., दिल्ली, हिमांचल प्रदेश, हरियाणा, पंजाब है। जिसके लिए सोसायटी इन क्षेत्रों में उपलब्ध औषधीय पौधों की सूची एवं इनकी उपलब्धता तथा इनके क्षेत्रों में उपलब्ध व्यक्तिगत/संस्थागत, वन विभाग उद्यान विभाग; विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, विभाग द्वारा स्थापित गार्डेन एवं नर्सरियों की सूची एवं उपलब्ध औषधीय पौधों की सूची तथा इन पौधों के कृषि प्रौद्योगिकी की जानकारी इकट्ठा करना है। इन क्षेत्रों की व्यावसायिक वनौषध मंडियों में उपलब्ध मात्रा एवं इनका निर्धारित औसत मूल्य एवं प्रमुख व्यावसायिक केन्द्रों के नाम की सूची तैयार करना है। जिससे इन क्षेत्रों या भारत वर्ष के अन्य भागों में रहने वाले स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं, वैद्यों, अनुसंधान कर्ताओं एवं औषधि निर्माताओं आदि को इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी इस निर्देशिका के माध्यम से मिल सके। इन क्षेत्रों में वनौषधि अनुसंधान के अवसर उपलब्ध कराने एवं इस निर्देशिका के प्रकाशन से एक ओर औषधि निर्माताओं, विक्रेताओं तथा औषधि उत्पादक किसानों के बीच समन्वय स्थापित हो सकेगा तथा दूसरी ओर इससे किसानों के आर्थिक स्तर में सुधार होगा।

इस निर्देशिका हेतु जानकारी भेजने में स्वयंसेवी संस्थाओं, नर्सरियों तथा औषधि विक्रेताओं से बहुत सहयोग मिल रहा है। खेद है कि औषधि निर्माताओं व बड़ी कंपनियों से अपेक्षित सहयोग नहीं मिला है यद्यपि वे औषधियों की अनुपलब्धता का शोर मचाती रहती हैं।

जीवनीय विज्ञान पहेली

यह देखने में आया है कि वैद्य भी पहेली भर कर भेज देते हैं। हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते। पहेली सामान्य पाठकों के लिये है। वैद्य अपने अनुभव लेखों के रूप में भेजें जिनका हम सदा स्वागत करते हैं।

प्रथम पुरस्कार : दो वर्ष तक निःशुल्क जीवनीय।

द्वितीय पुरस्कार : एक वर्ष तक निःशुल्क जीवनीय।

नियम और शर्तें

- पहेली का हल भेजने का कोई शुल्क नहीं देना होगा।
- पहेली का हल कोई भी पाठक भेज सकता है।
- पहेली का हल साधारण डाक से भेजना होगा।
- एक व्यक्ति को एक ही पुरस्कार मिल सकेगा।
- सर्वशुद्ध हल न आने पर पुरस्कार देने या न देने का अधिकार सम्पादक को होगा।
- सम्पादक का निर्णय हर स्थिति में मान्य होगा। किसी तरह की शिकायत सम्पादक से ही की जा सकेगी।
- किसी भी तरह का कानूनी दावा, कहीं भी दायर नहीं किया जा सकेगा।
- यहाँ छपे पृष्ठ को भरकर सामान्य डाक द्वारा भेजी गयी पूर्ति ही स्वीकार्य होगी।

कृपया सही का निशान ( ) उन वाक्यों पर लगायें जो सही हों। जहाँ विवरण देने के लिए कहा गया है, वहाँ विवरण भरें।

१. निम्नलिखित वाक्य पूरे कीजिये।

(क) वर्षाऋतु में शहद का सेवन. . . . . है।

मानव शरीर में जल का प्रतिशत . . . . से . . . . . प्र.श. पाया जाता है।

२. शरीर में जल की आपूर्ति दो प्रकार से होती है। उसके विवरण दीजिये।

३. जल का उत्सर्जन कई प्रकार से होता हैं। कृपया निम्न लिखित प्रकारों के समुख सामान्य मात्रा लिखें।

(१) मूत्र
(२) पसीना
(३) फुफ्फुस
(४) पुरीष

४. सामान्यतया गर्भिणी स्त्री को प्रतिदिन कितनी कैलोरी निम्नलिखित से मिलनी चाहिए।

(क) प्रोटीन
(ख) कार्बोहाइड्रेट
(ग) वसा

५. तनाव मस्तिष्क के किस भाग के अत्याधिक उपयोग से हो सकता है और क्यों?

६. मस्तिष्क की प्रमुख अस्थियों के नाम लिखिये–

(क) (ख) (ग)

(घ) (ङ) (च)

७. सामान्यतया पुरूषों और स्त्रियों के मस्तिष्क का भार क्या होता है?

८. मैडुला के बारे में विवरण दें।

९. विखंडित मनस्कता के लक्षण संक्षेप में बतायें :

१०. विभ्रम के पांच भेदों के नाम लिखिये।

(१) (२) (३)

(४) (५)

विज्ञान पहेली के हल

हमारे ग्रीष्म वर्षा ९५ अंक में प्रकाशित जीवनीय विज्ञान पहेली के कई हल प्राप्त हुये। इससे हमें विज्ञान पहेली की लोकप्रियता का आभास हुआ। इन सभी हलों में कोई भी सर्वशुद्ध हल न होने के कारण प्रथम पुरस्कार किसी को नहीं दिया जा रहा है।

द्वितीय पुरस्कार

श्रीमती आराधना आर्या
पुत्री श्री बुद्धि प्रकाश आर्य
रामपुरा हाउस
मु. रामगंज
जिला – अजमेर – ३०५००१
(राजस्थान)

को एक वर्ष तक जीवनीय निःशुल्क भेजी जायगी।

उ. प्र. आवास एवं विकास परिषद
104, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ

आवंटन/नीलामी सूचना

उपरोक्त विषयक लखनऊ जोन के अन्तर्गत विभिन्न नगरों में उपलब्ध आवासीय/व्यावसायिक सम्पत्तियों का आवंटन/नीलामी प्रत्येक माह की निम्नलिखित तिथियों में की जायेगी, जिसका विवरण निम्नवत् है।

क्र. सं.	योजना/शहर का नाम	प्रत्येक माह के लिए निर्धारित तिथि	आवंटन/नीलामी स्थल
1.	लखनऊ (इन्दिरा नगर, विकास नगर, राजाजीपुरम)	20	कम्यूनिटी सेन्टर, सेक्टर–18 इन्दिरा नगर, लखनऊ
2.	बाराबंकी	21	बाराबंकी सम्पत्ति कार्यालय
3.	फैजाबाद	25	फैजाबाद सम्पत्ति कार्यालय
4.	गोण्डा	18	गोण्डा सम्पत्ति कार्यालय
5.	बस्ति		
6.	गोरखपुर	17	गोरखपुर सम्पत्ति कार्यालय
7.	रायबरेली	11	रायबरेली सम्पत्ति कार्यालय
8.	सीतापुर	12	सीतापुर सम्पत्ति कार्यालय
9.	लखीमपुर		
10.	इलाहाबाद	26	इलाहाबाद सम्पत्ति कार्यालय
11.	प्रतापगढ़	27	प्रतापगढ़ सम्पत्ति कार्यालय
12.	वाराणसी	30	वाराणसी सम्पत्ति कार्यालय
13.	मिर्जापुर		
14.	बलिया	28	बलिया सम्पत्ति कार्यालय
15.	गाजीपुर		

1. यदि निर्धारित/आवंटन/नीलामी की तिथि को सार्वजनिक अवकाश रहेगा तो दूसरे दिन तदानुसार आवंटन/नीलामी का कार्यक्रम होगा।
2. उपलब्ध समस्त–आवासीय/व्यावसायिक सम्पत्तियों का पूर्ण विवरण सूचना पटल पर अनिवार्य रूप से अंकित किया जायेगा।

आवास आयुक्त

पुस्तक	:	*पेस्ट कन्ट्रोल एन्ड डिजीज मैनेजमेन्ट इन वृक्षायुर्वेदा*
भाषा	:	*अंग्रेजी*
प्रकाशक	:	*लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति, कोयम्बटूर*

समीक्षक : डा. के. सदाशिवन पिल्ले, पडप्पई, केरल

लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति (लो.स्वा.प.सं.स) ने प्राचीन भारतीय स्वास्थ्य रक्षा व्यवस्था को पुनर्जीवित करने और उसका संवर्धन करने का गंभीर प्रयास किया है और इसके लिये ख्याति प्राप्त की है। सुश्री के. विजय लक्ष्मी और श्री के. एम. श्याम सुन्दर द्वारा रचित पुस्तक 'वृक्षायुर्वेद में कीट और रोग नियन्त्रण' लो.स्वा. प.सं.स. का ऐसा ही एक प्रयास है। मैं यह अनुभव करता हूँ कि लो. स्वा.प.सं.स. का यह महानिबन्ध विषय का अतिविस्तार करने के कारण वृक्षायुर्वेद में रोग नियन्त्रण से दूर हट कर अप्रायोगिक हो गया है।

पौधों के वातज रोगों का निदान करने के लिये घी,वसा और मांस से सिंचाई का सुझाव दिया गया है तथा पित्तज रोगों के निदान के लिये शहद, चीनी और घी का धुआं देने का सुझाव दिया गया है। मैं लेखकों से इस चिकित्सा की वैज्ञानिकता का सवाल नहीं पूछना चाहता हूँ पर मुझे आश्चर्य है कि यदि लेखकों ने एक क्षण के लिये भी यह विचार किया होता कि वे यह चिकित्सा भारत जैसे गरीब देश के लिये सुझा रहे हैं जहां जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गरीबी रेखा के नीचे जीने को अभिशप्त है तो वे संभवतः ऐसी चिकित्सा का सुझाव नहीं देते।

'रोग नियन्त्रण में किसानों के अनुभव' अध्याय सूचनाप्रद है क्योंकि आजकल कीटनाशक उपयोग में वनस्पतिजन्य कीटनाशकों जैसे नीम आधारित कीटनाशकों का महत्व बढ़ता जा रहा है। यद्यपि कोशिका के स्तर पर वनस्पति एवं जन्तु कोशिका में कुछ चीजों को छोड़कर काफी समानतायें होती है, इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि पौधों और जन्तुओं की समान चिकित्सा की जा सकती है। मुझे आश्चर्य है कि लेखक पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के समान जन्तु जगत में कोई शरीर क्रिया कैसे ढूँढ़ेगे।

हम सभी को अपने देश में आयुर्वेद और परम्परागत स्वास्थ्य पद्धतियों को मिल रहे महत्व से प्रसन्नता है पर हमें इस बारे में अति–उत्साही नहीं होना चाहिये। आज हमने जैव–तकनीक की मदद से कीट और रोग प्रतिरोधी पौधों की बहुत सी प्रजातियां क्लोनिंग द्वारा विकसित करने में सफलता प्राप्त कर ली है। मुझे लो.स्वा.प.सं.स. द्वारा वृक्षायुर्वेद का प्रचार करने के महान उद्देश्य से यह पुस्तक प्रकाशित करने की जानकारी है परन्तु आशंका है कि यह पुस्तक शायद ही इस उद्देश्य की पूर्ति कर सके।

ज्योतिष और रोग

वृषभ राशि और आरोग्य

पं. काशीनाथ गोपाल गोरे

वृषभ राशि – यह राशि कृतिका नक्षत्र मंडल के प्रथम चतुर्थांश को छोड़कर शेष भाग, संपूर्ण रोहिणी नक्षत्र मंडल और मृगशिरा नक्षत्र मंडल के प्रथम अर्द्धांश पर व्याप्त है। यह काल पुरुष के मुख के बाहरी और भीतरी भागों में स्थित है। वृषभ राशि का स्वामी शुक्र है और इसका स्त्री लिंग है। इसका स्वभाव स्थिर है। यह राशि पृथ्वी तत्व प्रधान है। वृषभ राशि के कान्ति पर प्रभाव रूक्ष होता है। इसका श्वेतवर्ण है। चंद्रमा इस राशि के प्रथम से तीसरे अंश तक उच्चस्थ और चतुर्थ से तीसवें अंश अर्थात् राशि के अन्त तक मूल त्रिकोण में स्थित होता है। इसके प्रभाव क्षेत्र में ह्रस्वता, सुस्वरूप होना, विलासी रूचि, जांघे और मुंह पृष्ठ भाग और उरः प्रदेश बड़ा, क्लेश सहन करने की क्षमता आदि आते हैं। वृषभ राशि कफ प्रधान है। गर्दन, गला, स्वरयंत्र, अन्ननलिका पर वृषभ राशि का प्रभाव होता है। वृषभ राशि के प्रभाव से विलासी प्रकृति होती है जिससे अनेक रोग हो सकते हैं। अतः वृषभ से प्रभावित व्यक्ति को नियमित आहार विहार और नियमित व्यायाम पर पूर्ण ध्यान देना चाहिए। आहार में हलके पदार्थो का ग्रहण अभीष्ट है। भारी और वसायुक्त पदार्थो से तत्काल कष्ट हो सकता है। चूंकि वृषभ राशि हृदय को भी प्रभावित करती है। अतः किसी प्रकार की हड़बड़ी और उत्तेजना को सदैव टालना चाहिए। यह पृथ्वी तत्व प्रधान होने के कारण रूक्ष और शीत भी है। अतः वृषभ राशि के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले रोगों में जल तत्व और अग्नि तत्व के उचित संयोग से उपचार किये जाने पर सही लाभ होगा।

उड़ीसा राज्य सम्मेलन

पारम्परिक स्वास्थ्य पद्धतियों पर चर्चा करने के लिये यात्री निवास, भुवनेश्वर में २२ से २४ जून तक तीन दिवसीय राज्य सम्मेलन का आयोजन किया गया इसमें एलोपैथिक डाक्टरों, वैद्यों और स्वयंसेवी संस्थाओं ने भाग लिया। उड़ीसा में इस प्रकार के पहले सम्मेलन का आयोजन लोक स्वास्थ्य परंपरा संवर्धन समिति, कोयम्बटूर और एक स्वयंसेवी संस्था 'समबन्ध' ने आयेजित किया।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता कैपिटल हास्पिटल, भुवनेश्वर के डा. शशि नारायण महापात्र ने की। 'समबन्ध' की कार्यकारी निदेशक श्रीमती पुष्पा मोहन्ती ने अपने स्वागत भाषण में 'समबन्ध' की गतिविधियों की जानकारी दी। भारत में प्रचलित स्वास्थ्य रक्षा व्यवस्था के बारे में बताते हुये उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ब्रिटिश शासन द्वारा इसे नष्ट करने के प्रयासों के बावजूद वैद्यों और जन सामान्य के कारण यह व्यवस्था विशेषकर आयुर्वेद फलती फूलती रही। उन्होंने इस बात पर दुःख व्यक्त किया कि सरकार ने देश में प्रचलित स्थानीय स्वास्थ्य परंपराओं के अभिलेखीकरण का कोई प्रयास नहीं किया है।

उड़ीसा आयुर्वेद संघ के पूर्व अध्यक्ष कविराज श्री बनमाली दास ने दीप जला कर कार्यक्रम का उद्घाटन किया। अपने भाषण में उन्होंने आयुर्वेदीय औषधियों के इतिहास और विकास पर प्रकाश डाला और उन्होंने मानवजाति का भविष्य सुरक्षित बनाये रखने के लिये परिस्थतिकीय संतुलन बनाये रखने पर भी जोर दिया।

भारतीय होम्योपैथिक काउंसिल, भुवनेश्वर के निदेशक श्री श्रीवत्स सामल ने 'समबन्ध' को पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों के संबंधन का प्रयास करने के लिये बधाई दी। उन्होंने इंगित किया कि लोग आज हर तरह की बुराई जैसे धूम्रपान आदि पालने के बाद चमत्कारी औषधि की आशा करते हैं। उन्होंने परम्परागत औषधियों की सहायता से रोगों से बचाव और इस बारे में जन चेतना जागृत करने पर जोर दिया।

खुले सत्र का संचालन अंत्योदय सेवा केन्द्र, कटक के श्री चन्द्रशेखर मिश्र द्वारा किया गया। भारत ज्ञान विज्ञान समिति, भुवनेश्वर के डा. मनमोहन प्रधान ने बताया कि सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि पारंपरिक स्वास्थ्य रक्षा पद्धतियां बहुत प्रचलित हैं।

यूनानी चिकित्सालय भद्रक के डा. आर. डी. गिराच ने बताया कि पारम्परिक चिकित्सा पद्धतियों में लोगों के विश्वास की कमी का कारण एलोपैथिक औषधियों की हर जगह सरलता से उपलब्धता है।

विवेकानन्द योग निदान अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर के डा. शारदा किंकर पालित ने मनुष्य की बढ़ती हुई समस्याओं और तनाव के संदर्भ में स्वास्थ्य रक्षा व्यवस्था के रूप में योग के महत्व पर प्रकाश डाला।

कोपड, कोरापुट से आये एक्युप्रेशर और एक्युपंक्चर विशेषज्ञ डा. गंगाधर नायक ने अपने अनुभवों की चर्चा करते हुये कहा कि ये पद्धतियां पूरी तरह से भारतीय हैं और उनके क्षेत्र के आदिवासियों में प्रचलित हैं।

राज्य के विभिन्न जिलों से आये वैद्यों ने विभिन्न रोगों के बारे में अपने अनुभवों का आदान प्रदान किया। वैद्य श्री काली चरन दास ने हड्डी बैठाने का प्रशिक्षण भी दिया। सम्मेलन में पारम्परिक चिकित्सा पद्धति की विभिन्न समस्याओं पर समूह चर्चाएं भी की गई।

सम्मेलन के अन्तिम दिन कच्ची औषधियों, पुस्तकों, चित्रों, हरबेरियम आदि की प्रदर्शनी आयोजित की गई।

समापन सत्र में इंडो जर्मन सोशल सर्विस सोसायटी के श्री बी.के. मोहन्ती ने गैट और डंकल समझौतों के हमारे देश के आदिवासी और ग्रामीणों द्वारा सदियों से प्रयोग की जा रही ७००० से अधिक औषधीय वनस्पतियों पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी दी।

दांगली का औषध उद्यान

ललितपुर के मेडावरा रेंज के दांगली क्षेत्र में करीब ५० हेक्टेयर भूमि में औषधि निर्माण में प्रयुक्त होने वाली जड़ी बूटियों के पौधे रोपकर इसे औषध उद्यान का रूप दे दिया गया है। प्रभावी ढंग से देखभाल किए जाने के कारण जड़ी बूटियों का उक्त उद्यान यहां आने वालों को भी आकर्षित करता है।

पचास हेक्टेयर भूमि में सफेद मूसली, अफोपत्ती, सर्पगंधा, अश्वगंधा, शंखपुष्पी, नागरमोथा, विजयसाल समेत कई जड़बूटियों के पौधे रोपे गए हैं तथा आचार्य नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय के वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने वन विभाग के इस प्रयास की सराहना की है।

वन अधिकारी जड़ी बूटियों के संवर्द्धन के कार्यक्रम से काफी आशान्वित हैं। इनका कहना है कि जब दुर्लभ वनौषधियों को वनों से उठाकर खेतों तक ले जाया जाएगा तो कृषकों की आमदनी बढ़ जाएगी। चूंकि आयुर्वेदिक जड़ी–बूटियों की मांग दिनों दिन बढ़ रही है, जड़ी–बूटियों की कीमत भी बाजार में अन्य कृषि उत्पादों की तुलना में अच्छी है। इससे जहाँ कृषकों की आमदनी बढ़ेगी वहीं विलुप्त होती जा रही जड़ी–बूटियों को बचाया भी जा सकेगा। उन्होंने सफेद मूसली का उदाहरण देते हुए बताया कि कैसे जड़ी–बूटियों की खेती कृषकों के लिए लाभप्रद होगी। वन अधिकारियों ने बताया कि खेती करने पर कृषकों को सफेद मूसली की प्रति एकड़ फसल दो से पचास हजार रूपयों का मुनाफा हो सकता है।

हमारी बीमार स्वास्थ्य व्यवस्था

लोगों को महामारी से बचाना किसी भी सरकार का कर्त्तव्य है। परन्तु पिछले दिनों प्लेग की महामारी ने साबित कर दिया कि सरकार तो लोगों को महामारियों से बचाने का प्राथमिक कर्त्तव्य भी पूरा नहीं कर पा रही है।

वास्तव में प्लेग तो महामारियों की महामारी हो गई है जो पिछले पच्चीस वर्षो से देश को त्रस्त किए हुए है। इसके अलावा हमारा देश लगभग हर वर्ष हैजा (कहते हैं आंत्र शोथ) की महामारी झेलता है। प्लेग के विस्फोट से मात्र तीन महीने पहले बिहार, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, जम्मू–कश्मीर घाटी तथा उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में हैजे का जबर्दस्त प्रकोप हुआ था।

हैजे के अलावा हमारे यहां मस्तिष्क ज्वर तथा मेनिंजाइटिस के प्रकोप के समाचार भी प्रायः मिलते रहते हैं। भारत के पूर्वी भागों में कहर बरपाने वाला रोग कालाजार १६५० के दशक के अन्त तक समाप्त हो चुका था। परन्तु सत्तर के दशक में यह उत्तरी बिहार में फिर उभरा और धीरे–धीरे पश्चिम बंगाल के पड़ोसी जिलों में भी फैल गया। आज भी इसका प्रकोप जारी है मगर हमारे शोध संस्थानों में इस बात को लेकर कभी जिज्ञासा उत्पन्न नहीं हुई कि कालाजार गायब क्यों हुआ था और वापिस क्यों उभरकर खड़ा हो गया।

हाल ही में पश्चिम राजस्थान तथा उत्तर पूर्वी इलाकों में मलेरिया का आक्रमण हुआ। इसने दिखा दिया कि मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम जानकारी के अभाव से ग्रस्त है। इसी वजह से फील्सिपेरम परजीवी फैला और क्लोरोक्विन प्रतिरोधी परजीवी उत्पन्न हुआ।

बिडम्बना यह है कि भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधा की समृद्ध परम्परा मौजूद है। ब्रिटिश शासन के दौरान भी भारतीय चिकित्सा सेवा के अधिकारियों के नेतृत्व में महामारी नियंत्रण हेतु एक उम्दा संगठन मौजूद था। आजादी के बाद स्वास्थ्य सेवाओं का एक ज्यादा व्यापक नजरिया विकसित हुआ। यह काम राष्ट्रीय नियोजन समिति की स्वास्थ्य उप समिति (१९४०) तथा प्रख्यात भोर समिति (१९४६) ने सम्पन्न किया था। आजादी के बाद के पहले दो दशकों में इस क्षेत्र में कई बुलन्द प्रयास किए गए। ये वाकई भारत में स्वास्थ्य सुविधा के विकास के सुनहरे वर्ष थे। १९५२ में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र कार्यक्रम सामुदायिक विकास कार्यक्रम के हिस्से के रूप में ग्रामीण लोगों को निशुल्क समग्र स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने के मकसद से शुरू किया गया था। मानव संसाधन विकास का भी एक विशाल कार्यक्रम हाथ में लिया गया था। इसके अंतर्गत मेडिकल कॉलेजों व अन्य चिकित्सा संस्थानों में शिक्षा व प्रशिक्षण को एक सामाजिक रुझान दिया गया। प्रमुख स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने के वैकल्पिक ढंग के खोजने के क्षेत्र में इस तरह के अनुसंधान की बदौलत भारत ही नहीं अन्यत्र भी टी.बी. से निपटने के नजरिये में मलभूत बदलाव आए।

इस उम्दा शुरुआत और ठोस बुनियाद पर आगे निर्माण करने की बजाय अगले दशकों में हमारी सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा में तेजी से गिरावट आई। इस गिरावट की जिम्मेदारी सीधे–सीधे राजनैतिक नेतृत्व पर हैं। उन्होंने भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य में शिक्षा व अनुसंधान का काम करने वाले प्रमुख संस्थानों की उपेक्षा की। लोगों के स्वास्थ्य के प्रति उनकी अपमानजनक लापरवाही की वजह से स्वास्थ्य सेवाओं की रुग्णता के तीन कारकों ने सिर उठाया। एक तरफ तो यह अक्षम्य लापरवाही है और दूसरी तरफ कुल निवेश में स्वास्थ्य का अंश घटता जा रहा है। पहली योजना में ही स्वास्थ्य पर मात्र ३ प्रतिशत आवंटन था, वह भी सातवीं योजना तक घटकर मात्र २ प्रतिशत रह गया। अस्सी के दशक में स्वास्थ्य खर्च सकल घरेलू उत्पाद के ०.०८ प्रतिशत से घटकर ०.०४ प्रतिशत रह गया। और जैसे इतनी कटौती काफी न थी, १९९२–९३ के बजट में स्वास्थ्य निवेश में २० प्रतिशत की कटौती कर दी गई। मलेरिया कार्यक्रम में ४० प्रतिशत की भारी कटौती की गई। कहते है कि अगले बजट में विश्व बैंक–मुद्रा कोष के दबाव में इस कटौती को समाप्त किया गया। केन्द्रीय कटौती का राज्यों के बजट पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि कई राज्य तो ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा कर्मचारियों को मात्र वेतन दे पाए।

आप बतायें

आपको यह अंक कैसा लगा ?

'जीवनीय' पत्रिका आपके ही स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर प्रकाशित की जाती है। हम पूरी–पूरी कोशिश करते हैं कि इसका प्रत्येक अंक आपके लिए रुचिकर और लाभकारी हो जिससे वह आपके स्वस्थ जीवन का एक अंग बन सके। कृपया हर अंक पर अपनी राय, सुझाव या आलोचना भेजें। यह भी बतायें कि आपको कौन सा लेख सबसे अधिक पसन्द आया ?

विकासशील देशों पर दोहरा हमला

भारत डोगरा, नई दिल्ली

विकसित/अमीर देशों में छुआछूत और परजीवियों से जुड़ी बीमारियों में भारी कमी आ चुकी है– अब केवल एक प्रतिशत मौतें ही यहां इन बीमारियों से होती है। दूसरी ओर विकासशील/गरीब देशों में ४१ प्रतिशत मौतें अभी तक इन बीमारियों से ही होती हैं। विकासशील देशों में प्रतिवर्ष ५ वर्ष से कम आयु के एक करोड़ बीस लाख के लगभग बच्चों की मौत होती हैं। वर्ष १९६० में देखा गया कि इनमें से लगभग २३ प्रतिशत मौतें दस्त की बीमारियों से हुई, २८ प्रतिशत निमोनिया से हुई व १६ प्रतिशत मौतें खसरे, तपेदिक, टेटनस व काली खांसी जैसे उन कारणों से हुई जिन्हें टीके से रोका जा सकता है। इस तरह की मौतें विकसित देशों में लगभग पूरी तरह समाप्त हो चुकी हैं।

विकसित देशों में जानलेवा स्वास्थ्य समस्यायें और बीमारियां दूसरे किस्म की हैं। यहां ४७ प्रतिशत मौतें हृदय रोग से होती हैं व २१ प्रतिशत मौतें कैंसर से होती हैं। भोजन में वसा व हानिकारक रसायनों का अधिक मात्रा में होना, धूम्रपान व शराब का अधिक सेवन, शारीरिक व्यायाम का अभाव, अनेक खतरनाक रसायनों या आधुनिक उपकरणों से सम्पर्क स्थापित होना, मानसिक तनाव ये सब ऐसे कारण हैं जिन्होंने इन स्वास्थ्य समस्याओं को अमीर देशों में बहुत बढ़ाया है। किन्तु इनमें से अनेक कारण गरीब/विकासशील देशों में भी अपना असर दिखाने लगे हैं। फर्क यह है कि जहां अमीर देशों में हृदय रोग और कैंसर के ठीक समय पर इलाज करने की और इस बारे में लोगों को शिक्षित करने और चेतावनी देने के लिये बहुत बड़ा बजट है, वहां ऐसी किसी विशेष प्रयास की अनुपस्थिति में भारत जैसे देशों में हृदय रोग और कैंसर के अधिक जानलेवा सिद्ध होने की संभावना है।

नवीनतम आंकड़ों के अनुसार विकासशील देशों में हृदय रोग से होने वाली मौतें काफी बढ़ गई हैं। वर्ष १९९३ में इस कारण से ४२ लाख लोगों की मौत हुई। कैंसर से इस वर्ष विकासशील देशों में ३५ लाख लोगों की मौत हुई। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार इस समय एक वर्ष में पूरी दुनिया में कैंसर के ६० लाख केस सामने आते हैं व अगले लगभग २० वर्षों में इनकी संख्या १५० लाख हो जायेगी। इनमें से १०० लाख केस विकासशील/गरीब देशों में होने की संभावना है। एड्स की समस्या तो हर जगह बढ़ने की संभावना बनी हुई है, पर पर्याप्त जानकारी के अभाव से जितना खतरा बढ़ सकता है वह तो गरीब देशों को ही अधिक सहना पड़ेगा।

इस तरह बहुत से गरीब देश स्वास्थ्य समस्याओं के एक दुहरे हमले को झेल रहे हैं। पहले से बहुत नुकसान करने वाली अनेक बीमारियां बनी हुई हैं। कुछ बीमारियों पर पहले कुछ अंकुश पा लिया गया था (जैसे हमारे देश में मलेरिया और कालाजार) वे अब फिर अपना सिर उठाने लगी है। इनमें से अनेक बीमारियों के मूल में गरीबी और कुपोषण है। जब तक गरीबी और इसके लिये जिम्मेदार शोषण की मूल समस्यायें हल नहीं होती हैं, तब तक इन बीमारियों से भी असरदार ढंग से लड़ना संभव नहीं है। फिर भी बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार से इन बीमारियों को कुछ कम जरूर किया जा सकता है। गरीब परिवारों को बेहतर आवास व जल आपूर्ति द्वारा भी इन बीमारियों के प्रकोप को कुछ कम किया जा सकता है।

अधिकतर विकासशील देशों को गरीबी और शोषण दूर करने के उपायों में व गरीब परिवारों को बेहतर आवास व स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध करवाने में पिछले कुछ वर्षों में उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली है। इसके लिये काफी हद तक विदेशी कर्ज और उससे जुड़ी शर्तें भी जिम्मेदार हैं जिनके तहत राष्ट्रीय बजट में तरह–तरह की कटौतियों के लिये जोर डाला जाता है। १९८० के दशक में आर्थिक विषमता काफी तेजी से बढ़ी और अनेक गरीब देशों में स्वास्थ्य के बजट में बहुत कटौती हुई। यूनिसेफ ने इसे निराशा का दशक कहा।

इन परंपरागत स्वास्थ्य समस्याओं को कम करने के लिये एक ओर गरीबी और कुपोषण के लिये जिम्मेदार शोषण और अन्याय के विरुद्ध कदम उठाना जरूरी है तथा दूसरी ओर राष्ट्रीय प्राथमिकताओं में स्वास्थ्य व साफ पेयजल की उपलब्धि को अधिक महत्व देना जरूरी है।

दूसरी ओर जीवन–शैली से जुड़ी बीमारियों (विशेषकर हृदय रोग और कैंसर) को नियंत्रण में रखने के लिये शराब और धूम्रपान के विरूद्ध असरदार शिक्षा अभियान चलाना व इनके प्रचलन को जितना हो सके कम करना बहुत जरूरी है। पान मसाले, सुपारी आदि के अत्यधिक चलन को भी नियंत्रित करना आवश्यक है। भोजन संतुलित हो तथा इसमें तले हुये व मिर्च मसाले कम से कम हों कुछ शारीरिक व्यायाम किया जाये तो तेजी से बढ़ रही अनेक स्वास्थ्य समस्याओं से बचा जा सकता है। कैंसर और हृदय रोग का पता ठीक समय पर लग जाये और उसी समय इलाज हो जाये, यह इन बीमारियों के सस्ते व असरदार इलाज के लिये बहुत जरूरी है और यदि इसकी व्यवस्था नहीं हो पाती तो हमारे जैसे गरीब देश में ऐसे रोगियों के लिये शायद ही कोई उम्मीद बचती है।

स्वास्थ्य समस्याओं के इस दुहरे हमले को पहचानना और समय रहते इसको नियंत्रित करने के असरदार उपाय करना बहुत जरूरी है। उचित समय पर इन बीमारियों की रोकथाम के लिये किया गया खर्च भविष्य में महंगी बीमारियों पर होने वाले कई गुणा खर्च से हमें बचायेगा। किन्तु जिस तरह शराब और धूम्रपान का चलन देश में तेजी से बढ़ रहा है, उससे लगता नहीं है कि हम सिर पर खड़ी बेहद गंभीर स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति सचेत हैं।

अंकुर युवा चेतना शिविर

अंकुर युवा चेतना शिविर की स्थापना ८ अगस्त १९८६ को की गई थी। इसका उद्देश्य युवाओं की ऊर्जा को सृजनात्मक दिशा देकर समाज और मानवता की भलाई के लिये उसका उपयोग करना है। युवाओं के समग्र विकास हेतु उनमें सामाजिक चेतना जाग्रत कर, उनके समर्थन और सहयोग से संस्था समाज के निर्धन तबकों के लिये काम करती है। स्वास्थ्य, शिक्षा, पेय जल, स्वच्छता और जन चेतना जागृत करने के लिये अंकुर सामूहिक सहभागिता और युवा प्रेरणा के माध्यम से कार्य करती है।

अंकुर का विश्वास है कि आगे आने वाले समाज में युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होगी, यदि उन्हें प्रेरित किया जाय तो वे दूसरों को भी विकास और जीवन की दशा सुधारने के लिये प्रेरित कर सकते हैं। सामूहिक सहभागिता के बिना कोई भी काम नहीं किया जा सकता है उसका उद्देश्य चाहे जितना अच्छा क्यों न हो अतः किसी भी निर्धन समाज में स्वयं अपने उत्थान के प्रति चेतना जागृत करना आवश्यक है। समाज सुधार में महिलाओं की बड़ी अहम भूमिका है। महिलाओं को शक्ति प्रदान कर उनके विकास के लिये प्रयास करने से पूरे समाज का विकास होता है।

अंकुर ने अपनी स्थापना के बाद निम्न कार्यक्रम प्रमुखता से किये हैं :

मलिन बस्ती निवासी और बाल श्रमिक

अंकुर युवा चेतना शिविर के प्रयासों से आठ स्वयंसेवी संस्थाओं ने मलिन बस्ती निवासी बच्चों और बाल श्रमिकों के कल्याणार्थ एक नेटवर्क की १४ अगस्त १९९३ को स्थापना की। इसमें अंकुर के अतिरिक्त सिड्रैप, लक्ष्मी, एन.वाई.के, सबला, सम्बल, सेवा एवं यू.पी. सी.सी. डब्लू ने भाग लिया। इन्होंने अंकुर के श्री प्रभाकर सिन्हा द्वारा, प्रस्तावित कार्य योजना को मंजूर कर यूनीसेफ एवं राज्य सरकार के समाजोत्थान विभाग की सहायता से लखनऊ की मलिन बस्ती बापू नगर में काम किया। वहां पर उस क्षेत्र तथा उससे लगे क्षेत्रों के २५० बच्चों को स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वस्थ मनोरंजन उपलब्ध कराया गया। इस बस्ती में स्थापित केन्द्र अब भी कार्यरत है।

दस्त रोग के विरुद्ध अभियान

लखनऊ की ५०,००० से अधिक जनसंख्या वाली ४० मलिन बस्तियों में अगस्त से अक्टूबर १९९३ तक जल से फैलने वाले रोगों विशेषतया दस्त, कालरा और पीलिया के विरुद्ध स्वास्थ्य शिक्षण और ओ.आर.एस. का प्रयोग करने हेतु अभियान चलाया गया। इसमें १५ व्यक्तियों की टीम ने यूनीसेफ के श्री जीरो मास्टर व उप मुख्य चिकित्साधिकारी डा. ए.बी. सिन्हा के मार्ग निर्देशन में कार्य किया।

सामूहिक हैन्डपम्प

अंकुर ने लखनऊ की २० मलिन बस्तियों में जहां इन्डिया मार्क–३ हैन्डपम्प लगाये जाने थे, सामाजिक जागृति का काम करके इन बस्तियों की महिलाओं के जल प्रबन्धन दल बनाये तथा इनकी सहायता से हैन्ड पम्प लगाने वाले स्थानों का चयन किया। इस कार्यक्रम की विशिष्टता यह थी कि हर हैन्ड पम्प के लिये दो महिला मैकेनिकों को प्रशिक्षित किया गया। इस प्रशिक्षण में उ. प्र. जल निगम के इंजीनियरों ने सहायता की तथा यूनीसेफ ने कार्यक्रम का वित्तपोषण किया। यह कार्यक्रम नवम्बर १९९३ से मार्च ९५ तक चलाया गया।

युवा परिवर्तन की उ. प्र. शाखा

अंकुर के अनवरत प्रयासों से ८ फरवरी ९४ को विश्वव्यापी आंदोलन यूथ इडिंग हंगर जिसे भारत में युवा परिवर्तन के नाम से जाना जाता है, की उ. प्र. शाखा की स्थापना हुई। इस आंदोलन का प्रारम्भ भारत में अप्रैल १९९३ में किया गया और यह उ. प्र. समेत आठ राज्यों में फैल गया है। इस आंदोलन द्वारा युवा शक्ति को विकास एवं सामाजिक पुनर्निमाण की दिशा में मोड़ने के प्रयास किये जाते हैं। उ. प्र. शाखा की स्थापना के बाद लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. महेन्द्र सिंह सोढ़ा की अध्यक्षता में राज्य कौंसिल का गठन किया गया। राज्य कौंसिल के दिशा निर्देशन में २५–२६ जून १९९४ को "बाल विकास के लक्ष्य : उत्तर प्रदेश में चुनौतियों एवं युवाओं की भूमिका" विषय पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। युवा परिवर्तन की मिर्जापुर के 'कोल समुदाय' में कार्य करने की योजना है।। युवाओं में जागृति लाने के लिये अगस्त १९९४ से 'परिवर्तन की ओर' अभियान प्रारम्भ किया गया।

छात्र शिक्षा एवं उत्प्रेरण कार्यक्रम

इस कार्यक्रम का उद्देश्य छात्रों में मलिन बस्ती निवासियों की विभिन्न समस्याओं के प्रति जागृति पैदा करने और छात्रों द्वारा उन समस्याओं को दूर करने में सहयोग की सम्भावनाओं का पता लगाना रहा। इस कार्यक्रम हेतु सेंट फ्रांसिस कालेज, लखनऊ की कक्षा ११ के ३२ छात्रों को चार समूहों में बांट कर उन्हें बाल श्रमिकों, दस्त रोगों एवं आयोडीन की कमी से होने वाले रोगों, सम्पूर्ण टीकाकरण कार्यक्रम और कानूनी चेतना अभियान के क्षेत्र में प्रशिक्षत किया गया। यह कार्यक्रम अक्टूबर ९४ से फरवरी ९५ तक चलाया गया।

सर्वेक्षण कार्यक्रम

अंकुर युवा चेतना शिविर द्वारा यूनीसेफ की सहायता से १५ मलिन बस्तियों में एक सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण का उद्देश्य इन बस्तियों में स्वास्थ्य, शिक्षा, पेय जल की उपलब्धता आयोडीन नमक की उपलब्धता दस्त रोगों की व्यापकता, ओ.आर.एस. के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त करना था। यह सर्वेक्षण एक माह में पूरा किया गया।

संस्था के बारे में अधिक जानकारी के लिये सम्पर्क करें– **अंकुर युवा चेतना शिविर**

एम.एस.–५८, सेक्टर–डी, अलीगंज

एक्स्टेन्शन, लखनऊ – २०, फोन – ३७८०६२

अपने सुझावों से जीवनीय को और अधिक उपयोगी बनाएं

❒ **प्रथम पुरस्कार** – रु. ५०० या आजीवन मुफ्त जीवनीय ❒ **द्वितीय पुरस्कार** – रु. ३०० या ६ वर्ष तक मुफ्त जीवनीय
❒ **तृतीय पुरस्कार** – रु. १५० या तीन वर्ष तक मुफ्त जीवनीय ❒ **पाँच सांत्वना पुरस्कार** – एक वर्ष मुफ्त जीवनीय

(पुरस्कार के लिए इस फार्म को ही काटकर भरना मान्य होगा। जीवनीय सोसायटी द्वारा नामित समिति का निर्णय अन्तिम होगा।)

स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लिए सरलता से उपलब्ध पौधों के औषधीय एवं पोषक गुणों का स्वास्थ्यवर्धन एवं रोग निवारण में विशेष उपयोग है। जीवनीय में स्वास्थ्य की समस्याओं से बचाव और उपचार पर सरल भाषा में घरेलू एवं उपयोगी जानकारी प्रसिद्ध चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों के अनुभव पर आधारित होती है। पत्रिका को और उपयोगी बनाने के लिए नीचे दिए प्रश्नों के उत्तर देकर पत्र पोस्ट करने की कृपा करें।

आपकी प्रतिक्रिया न केवल हमारा उत्साहवर्धन करेगी वरन् जीवनीय को आपके लिए और भी उपयोगी बनाएगी।

आपको जो उचित लगे उस पर सही (✓) का निशान लगाएं

१. आपके विचार में जीवनीय पत्रिका में प्रकाशित सामग्री

अ. स्वास्थ्य के ज्ञानवर्द्धन के लिए उपयोगी है	अधिक	☐	सामान्य	☐	कम	☐
ब. स्वस्थ रहने के सिद्धांतों पर जोर देती है	अधिक	☐	सामान्य	☐	कम	☐
स. रोगों के लक्षण पहचानने में सहायक है	अधिक	☐	सामान्य	☐	कम	☐
द. रोगों की रोकथाम के लिए उपयोगी है	अधिक	☐	सामान्य	☐	कम	☐
य. उपचार में सहायक होती है	अधिक	☐	सामान्य	☐	कम	☐

२. अ. पत्रिका के ३ स्थायी स्तंभ जो आपको अच्छे लगे .....

ब. पत्रिका के ३ स्थायी स्तंभ जो आपको सामान्य लगे .....

स. पत्रिका के ३ स्थायी स्तंभ जो आपको बेकार लगे .....

३. कोई नया स्तंभ जो आप सुझाना चाहते हैं.....

४. अन्य स्वास्थ्य पत्रिकाएं जो आप पढ़ते हैं।.....

५. अन्य पत्रिकाओं में आपको क्या अच्छा लगता है? .....

.....

जीवनीय पत्रिका पर आपकी प्रतिक्रिया/सुझाव* .....

.....

.....

.....

(यदि आवश्यक हो तो अलग से कागज पर भी लिखें)*

मैंने पार्टी के बारे में अपना विचार बदल दिया है। अब हम बाहर पिकनिक मनाने जाएंगे। हम पार्क में फूटबाल और क्रिकेट खेलेंगे।
NOV 3
क्यों? क्या हुआ?
मुझे लगता है कि रेखा खाने के बारे में भी ठीक कह रही थी।
खाना?
हाँ। चलो हम बहुत सारे स्वादिष्ट फल, सब्जियों के सेन्डविच, दूध, ताजे फलों का रस, अंकुरित बीज, मूंगफली.....
NOV 3
यह तो बहुत अच्छी बात है। यह तुम्हें लम्बा और स्वास्थ्य भरा जीवन देंगे।
पार्क में मेरे जन्मदिन पर हम पौधे भी लगाएंगे। हम यह देखेंगे कि वह कैसे बढ़ते हैं मेरे अगले जन्मदिन तक।
मोमबत्ती बुझाने से कहीं बेहतर है पौधे लगाना।

जन्म दिन मुबारक हो

(पिछले अंक से आगे. . .)

रजि. नं. ५११०३/६०

स्वस्थ परिवार के लिए नियमित पाठक बनें

चंदे की दरें

	व्यक्तिगत (रुपये)	संस्थागत (रुपये)
वार्षिक	५०	१००
द्वैवार्षिक	६०	१८०
त्रैवार्षिक	१३०	२६०
आजीवन	५००	१०००

आधुनिक जीवन की भाग दौड़, अनियमित खान–पान और बढ़ते प्रदूषण के कारण स्वास्थ्य की समस्याओं से बचाव और उपचार की सरल भाषा में घरेलू एवं उपयोगी जानकारी के लिए प्रसिद्ध चिकित्सकों एवं वैज्ञानिकों के अनुभव से लाभ उठाएं। जीवनीय घर बैठे प्राप्त करने के लिए नियमित ग्राहक बनें।

अपना चंदा मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा 'जीवनीय सोसायटी, लखनऊ' के पक्ष में निम्न पते पर भेजें :

जीवनीय सोसायटी

ई–III/२४६, सेक्टर एच, अलीगंज, लखनऊ – २२६०२०